❋ आत्मिक प्राइमर ❋

उर्फ

❋ आत्मिक ज्ञान प्रकाश ❋

लेखक—

महर्षि शिवव्रतलाल वर्मन् एम. ए.,

सम्पादक—

नन्दूभाई

(निजामाबाद दक्षिण)

सहायक सम्पादक—

देवीचरन मीतल

(लेखराज नगर) अलीगढ़

प्रथम वार

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य ।।) प्रति

गुरु ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरु साक्षात् पर ब्रह्मः तस्मै श्रीगुरवेनमः॥

वर्ष २ | जून १९५६ | तरङ्ग ४

धन्यवाद

साधो सतगुरु मरम जताया ॥टेक॥
आसन मारा घट के भीतर, कहीं गया नहिं आया।
हाथ-पाँव को कौन हिलावे, सहजहिं योग कमाया ॥१॥
पंगुल बनकर परबत लांघै, ब्रह्म शिखर चढ़ आया।
गूंगा बहु विधि बाणी बोले, अनहद नाद बजाया ॥२॥
बिन कर कर्म करूँ मैं सब विधि, बिन पग पन्थ में आया।
बिन जिभ्या रस स्वाद लेत हूँ, सतगुर कीन्हीं दाया ॥३॥
जहाँ मन जाय लगे तहाँ उनमन, सुन्न समाध रचाया।
भँवर गुफा की दुर्गम घाटी, तोड़ सत्त पद पाया ॥४॥
भव दुख से नहिं रहूँ दुखारी, गुरु पूरे का आज्ञाकारी।
राधास्वामी चरण शरण बलिहारी, भक्ती साज सजाया ॥५॥

—:o:—

❋ परमावश्यक सूचना ❋

आत्मविलीन परम संत महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज वर्मन एम० ए०, एल-एल० डी० का जीवन-चरित्र

महर्षि जी महाराज जैसे जगत विख्यात महापुरुष की प्रशंसा किसी से छिपी नहीं है। उन्होंने अपनी क़लम से लगभग पांच हज़ार पुस्तकें लिखकर दुनियाँ का रिकार्ड तोड़ दिया। लाखों करोड़ों नर-नारियों ने उनके आत्मज्ञान से लाभ उठाया और निष्पक्ष भाव व विचारों की सराहना की। इसलिए ऐसे महापुरुष के जीवन-चरित्र का लिखा जाना परमावश्यक है। यह कार्य छोटा नहीं है। इसकी पूर्ति उनके सब प्रेमियों की सहायता पर निर्भर है।

अतः हर प्रेमी भाई से प्रार्थना है कि वह कृपा करके अथवा अपना कर्त्तव्य समझकर महर्षि जी के हालात (जितने भी उन्हें मालूम हों) शीघ्र ही नीचे पते पर भेज दें।

श्री मोहनलाल नैय्यर अ० सहायक मन्त्री, मार्फत मकान नं० ६८३ शिवाजी स्ट्रीट, करौल बाग़, देहली नं० ५।

परम संत दयाल फक़ीरचन्द जी महाराज की स्वीकृति से यह कार्य हाथ में लिया गया है।

विनीत—नन्दलाल सचदेव उर्फ आनन्ददयाल
अ० मन्त्री दयाल फ़क़ीर सत्संग सभा,
बी० २५/३२ पुराना राजेन्द्रनगर, देहली।

—:o:—

भूमिका

कठिन विषय बच्चों की भाषा में सीधी-सीधी बातें ! न लगाव न लपेट, न शब्दों की तोड़-मरोड़ और न कठिन अर्थों की भर मार। जो बात है साफ़-साफ़ है। ध्यान रक्खा गया है कि सरल भाषा में अध्यात्मिक (रूहानी) विषय दर्शाया जाय ताकि जिसका रूझान इस ओर है वह बिना किसी कठिनाई के इसे समझ सके।

समय बड़ा अद्भुत है। "एक हाथ ककड़ी के नौ-नौ हाथ बीज" ! बात का बतंगड़ हो रहा है। अनेक प्रकार के धार्मिक विचार हर चारों ओर हाथा-पाई करने पर तुले हुये हैं। सचाई छुपी हुई है। पर्दे पर पर्दा पड़ता चला जा रहा है। असलीयत किसी की समझ में नहीं आती और कहीं भी उसके दिखाने समझाने और ठौर-ठिकाने की बात बताने का प्रबन्ध नहीं है।

—:o:—

जो मत-मतान्तर की उलझन में पड़ा, बुरी तरह से उलझा। जहाँ देखो खटपट, जिधर दृष्टि डालो अटपट ! साफ रास्ता दिखाई नहीं पड़ता। जो मनुष्य जिस विचार में फँसा, वह उसी का हो रहा। हठधर्मी आ गई। पक्षपात ने गला दबोच लिया। फिर कोई समझे भी तो कैसे समझे ! और कोई किसी को समझाये भी तो कैसे समझाये ! समझना भी कठिन होगया और समझाना भी कठिन होगया।

—:o:—

अन्तः करण शुद्ध हो, बुद्धि ग्रहण करने वाली हो, भरम और संशय दूर हों, तब तो आंख खुले। धुंधली आँख क्या देखे ! बहरे कान क्या सुनें ! जहाँ हठीला पन, पक्षपात और

हठधर्मी हो, वहाँ इन्साफ़ नहीं होता। उसके पांव उखड़ जाते हैं और चित्त पर कुछ इस प्रकार का मैल जम जाता है कि फिर वह कुरेदने से भी नहीं निकलता। ऐसी हालत में कोई करे भी तो क्या करे !

—:o:—

पक्षपात की दशा में बुद्धि तंग (संकीर्ण) होती है। रूहानी (आध्यात्मिक) बातों के सुनने समझने के लिये विशाल बुद्धि की आवश्यकता है।

हठधर्मी दिल का कोढ़ है। पहिले कोढ़ का रोग दूर हो तब यदि शारीरिक तथा मानसिक संगत प्राप्त हो, उस समय सम्भव है कि कोई अध्यात्मिक सन्देश को सुने और उस पर विचार करे। इससे पहिले इसकी सम्भावना कठिन है।

पराधीनता तो पराधीनता ही है परन्तु बुद्धि का किन्हीं विचारों के आधीन होना सबसे बुरा है। और तरह की पकड़-जकड़ से छुटकारा पाना सरल है मगर इससे छुटकारा पाने की आशा कम की जाती है।

चाहे कोई भी हो दासता की बेड़ी में जकड़ा हुआ दृष्टि-गोचर हो रहा है।

गुरु पशु नर पशु, त्रिया पशु, वेद पशू संसार।
मानुष ताही जानिये, जाहि विवेक विचार॥

इस दोहे का अर्थ यह है—

कोई गुरु का पशु है। गुरु के स्वरूप को समझा नहीं, उसका दास हो रहा है। ये ग़लत तरीके के गुरु उपासक हैं।

कोई मनुष्य (नर) मनुष्य का पशु बना हुआ है। मनुष्यता की समझ बूझ नहीं और मनुष्यता का झूँठा अभिमानी होगया है। यह मनुष्य (देह) के उपासक हैं।

कोई-कोई स्त्री के पुजारी हैं। स्त्री जो मंत्र कान में फूँक दे

वह ठीक, बाकी सब ग़लत। यह त्रिया पशु हैं।

तमाम संसार वेद पशु अर्थात् वेदों को बिना समझे-बूझे वेदों की अनुयायी बनी हुई है। ये वेदों के दास हैं।

न वेदों को देखा न वेदों को जाना।
न वेदों की तालीम ही को पिछाना॥ १॥
मगर वेद का हल्ला मचाया।
भरम में फँसे औरों को भी फंसाया॥ २॥
यह अन्धे नयन सुख बने फिर रहे हैं।
भ्रम और अज्ञान से घिर रहे हैं॥ ३॥
कोई इन से पूछे कि है वेद क्या शै।
कहेंगे वह सब कुछ है जो है वही है॥ ४॥
यह हैं जानवर, जानवर उनको समझो।
यह हैं बेख़बर, बेख़बर इनको समझो॥ ५

मनुष्य केवल वह है जिसमें विवेक विचार की आदत है। प्रकृति ने यों ही तुमको बुद्धि व विवेक शक्ति प्रदान नहीं की। क्या इसका कोई उद्देश्य भी है या नहीं? या यों ही वेद-वेद चिल्लाने से तुम्हारा कल्याण होगा। संत इन सब को पशु कहते हैं जो मनुष्यता के गुणों से रहित हैं और एक खूंटे से बंधे हुये साधारण चारा घास खा-खाकर जुगाली करते रहते हैं। इनमें से किसी के लिये भी आध्यात्मिक सन्देश नहीं सुनाया जाता क्योंकि वह उसके अधिकारी नहीं हैं। उनमें अब तक अध्यात्म की योग्यता नहीं आई। आत्मिक अधिकार और संस्कार जाग उठें तब इस सन्देश के सुनाने का कुछ लाभ होगा, नहीं तो वह व्यर्थ सिद्ध होगा।

—:o:—

भाई! धार्मिक पन्थ अगर कोई वस्तु है तो वह केवल अध्यात्मिक विद्यालय है। पढ़ना हो तो किसी विद्यालय में

भरती होकर पढ़ो। इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है। लेकिन यह कहना कि "मेरा विद्यालय अच्छा है तुम्हारा खराब है" इससे क्या लाभ है। विद्यालय में पढ़ो, सोचो, समझो, बुद्धि को विशुद्ध करो, मस्तिष्क को ऊँचा और मानसिक भावनाओं को उत्तम करो। करते चलो। अन्त में कुछ न कुछ तुम्हारे पल्ले पड़ ही जायगा। यदि योंही पक्षपात के जाल में फँसकर अनाप-शनाप वेद-वेद चिल्लाते रहे तो परिणाम यह होगा कि तुम्हारे जीवन में अमली रूप से सुधार न होगा। कोरे के कोरे रह जाओगे। अपने लिये हानिकारक और दूसरों के लिये हानि पहुँचाने वाले ठहरोगे। समझलो, सोचलो, मन में विचार करलो कि यह बात सच्ची है या नहीं।

बस एक बात पर ठहरा है फैसला दिलका।

—:o:—

राधा स्वामी मत एक प्रकार का उच्च कोटिका अध्यात्मिक विद्यालय है। उसकी हैसियत हम केवल इतनी ही रखते हैं। उसको इससे अधिक महत्व नहीं देते।

यदि तुमको अन्य जगह अन्तःकरण की शान्ति, मन की प्रसन्नता और अध्यात्मिक बोध प्राप्त होता है तो हमें कोई अधिकार नहीं है कि तुमको पल्ला पकड़ कर अपनी ओर खींचे। जाओ जहाँ तुम्हारा काम बने। अपना काम बनाओ।

यदि दूसरी जगह तुम्हारा काम नहीं बना, अध्यात्मिक प्यास नहीं बुझी और इस अमृत रस की इच्छा है और इसका स्वाद लेना चाहते हो तो इसका दरवाजा विशाल हृदय से तुम्हारे लिये खुला है। शौक से आओ। जैसे सबकी देख-भाल की है, इसकी भी परीक्षा कर देखो। न कोई विवशता है न दबाव है। यह प्रेम-प्रीति का विद्यालय है।

सूक्ष्म बुद्धि वालों के लिये यह मार्ग खुला है। उस पर भी

चेताये देता हूँ कि भेड़ चाल न चलो। भेड़ चाल चलना पशुओं और अज्ञानियों का काम है। तुम पशु नहीं हो। मनुष्य हो। मनुष्यता से काम लो। दुनिया की ऐसी रीति है कि गुरु महाराज आये। एक दो रुपया भेंट चढ़ाओ और उनसे नाम लो। यह एक दो रुपये के बदले नाम लेने वालों में किंचित कोई एक आध व्यक्ति आध्यात्मिक लाभ उठाता है। नहीं तो यह सब के सब रीति रिवाज के मानने वाले और चलने वाले हैं।

—:o:—

राधा स्वामी मत जैसा कि पहिले कहा गया है, आध्यात्मिक (रूहानी) विद्यालय है। इस विद्यालय का नाम सत्संग है। इसके तीन स्तम्भ हैं—(१) सतगुरु (२) सत्संग (३) सत्नाम। सत्संग से अभिप्राय है, जीवित पुरुष का संग। सतगुरु से अभिप्राय है, जीवित गुरु और सत् नाम से अभिप्राय है जीवित सतगुरु का दिया हुआ ज़िन्दा नाम। जीवन का पाठ जीवित सतगुरु और उसकी संगत से मिलेगा। इस तरह विद्यालय, सतगुरु और उसकी सतविद्या का सिलसिला नियमानुकूल जारी किया गया है। केवल इस भाव को लेकर तुम सत्संग में जाओ। शेष बातों से प्रारम्भ में बचे रहो।

—:o:—

सत्संग में शिष्टाचार (आदाबे तरीक़त) का ध्यान रखना आवश्यक है। अदब या सभ्यता के साथ बैठो। श्रद्धा पूर्वक वचनों को सुनो और उन वचनों पर मनन करने का अभ्यास करो। शुरू में किसी तरह के प्रश्नोत्तर की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। न किसी पुस्तका का प्रमाण दो, न किसी महापुरुष के मत का प्रमाण दो। पुस्तक स्वयम् निर्जीव (जड़) है और व्यवहारिक दृष्टि से पुस्तक का लेखक भी निर्जीव ही है। पुस्तक

का अध्ययन और लेखक का सम्मान आवश्यक है। पुस्तक पढ़ी अच्छा किया। पढ़े-लिखे न होते तो विचार-शक्ति को उभरने का अवसर न मिलता। यह लाभ कम नहीं है। शताब्दियों के अनुभव व प्रमाणों के ज्ञान को प्राप्त करना अच्छा है, परन्तु जब तक यह सब अनुभव तुम्हारे कार्य-व्यवहार व अभ्यास में भली प्रकार परिणत न हो जायँ तब तक निरर्थक और व्यर्थ हैं। विद्या बिना व्यवहार में आये किसी काम की नहीं होती। प्रायः संशय और भ्रम के उलझन में फँसा देती है। यहाँ इस बात का प्रश्न नहीं किया जाता कि तुम्हारी पुस्तक कैसी है और इसमें क्या लिखा है अथवा तुम्हारी पुस्तक के लेखक का क्या विचार है। बल्कि यह प्रश्न दृष्टि के सामने रहता है कि तुम कैसे हो? और बस! पुस्तक न दिखाओ। अध्यात्मिक विद्यालय में आकर तुमको जीवित गुरु की जीवित संगत में या विद्यालय में सच्चे जीवन का पाठ पढ़ना है।

गुरु जीवित (जिन्दा) हो, जीवित गुरु की ही संगत हो, जीवित गुरु की ही शिक्षा और आशीर्वाद हो, क्योंकि मृतक पुरुष से कब और कैसे लाभ हो सकेगा? रोगी के लिए जीवित वैद्य की आवश्यकता है। उसकी चिकित्सा लाभदायक हो सकती है। अधूरे वैद्य से काम नहीं बनेगा, उससे तो जान का भी खतरा है और न पिछले वैद्यों की लिखी हुई पुस्तकों से ही काम बनेगा।

—:o:—

सत्संग के समय दृष्टि-से-दृष्टि डटी रहे। शिष्य की दृष्टि सदा गुरु की सूरत पर रहे। ध्यान रक्खो कि गुरु काना या आँख का ऐंचाताना न हो, नहीं तो इसकी संगत आत्मिक दृष्टि से अति हानिकारक सिद्ध होगी। माथा भी चौड़ा हो। इससे तुमको आत्मिक लाभ प्राप्त करना है। कहावत है—"तंग पेशानी,

तंगदिली की निशानी। आँख कानी ख्वाह ऐंचातानी, कशमकश की बानी।" यह सहस्रों वर्ष के अनुभव की बात है। काना या ऐंचाताना बुद्धिमान तो हो सकता है लेकिन सदा झगड़ा-झंझट का कारण बना रहेगा।

तुमको आगे चलकर साधन के समय इसी गुरु का ध्यान करना होगा। यदि उसमें आँख व माथे का दोष है तो हज़ार कोशिश करने पर भी तुम समाहित चित न हो सकोगे। हानि होगी। यह शब्द चेतावनी के रूप में प्रगट किये गये हैं ताकि सँभल कर रहो।

सत्संग में सभ्यता या अदब से बैठकर बचन सुनो। जो तुम्हारे मतलब की हो उसे छाँट लिया करो। शेष बातों से निस्सम्बन्ध होते चलो। घर पर जाकर इन छटी हुई बातों पर विचार करने की आदत डालो और उन्हें अपने दैनिक जीवन का मानसिक आहार बनाते चलो ताकि शक्ति, योग्यता और पुष्टि बराबर आती जाय और तुम विचार की दृष्टि से बलवान होते जाओ।

—:o:—

प्रथम तो कमाई किये हुए विचार सदैव प्रभावशाली होकर तुम्हारी आत्मा को उच्च बनाते चलेंगे। यदि कोई बात ममझ में न आये और कठिन और उलझन में डालने वाली हो तो अदब के साथ गुरु से प्रश्न करके उत्तर लो। झिझको नहीं। पूछने में हिचको नहीं। यदि मन में एक भी भ्रम रह गया तो आगे चलकर वह अध्यात्मिक पथ में बहुत रुकावट डालेगा। साधन और अभ्यास में बाधक होगा। घर में चोर रखना और आस्तीन में साँप पालना अथवा दिल के अन्दर किसी प्रकार के संशय और सन्देह को स्थान देना बहुत बड़ी बला का पालना है।

इन शब्दों के लिखने की कोई विशेष आवश्यकता तो नहीं थी, लेकिन सावधानी की दृष्टि से यहाँ समझ-बूझकर उनको स्थान दिया गया है, ताकि सोचने-समझने और संगत का लाभ उठाने का आनन्द मिल सके।

इस तरह के व्यवहार की शैली का नाम हमने कसौटी रख छोड़ा है। इस प्रकार यदि थोड़े दिन भी सत्संग किया जायगा तो उससे बड़ा भारी लाभ होगा।

यदि विश्वास हो गया हो तो उत्सुकता के साथ साधन में लगो। यदि पूर्ण विश्वास नहीं हुआ तो फिर भूल में न पड़ो। किसी और जगह देखो। किसी दशा में औरों की देखा-देखी उनकी नक़ल न करो, न बिना सोचे-समझे अनुकरण करो। नहीं तो याद रक्खो सारी आयु पछताना पड़ेगा।

अध्यात्म या आत्मिक ज्ञान कोई हौवा नहीं है, जिसके नाम लेने से लोग व्यर्थ ही कानों पर हाथ धरते हैं। साधारण व्यवहार, सादा जीवन और उच्च विचार केवल इन्हीं तीन साधारण शब्दों में आत्मिक ज्ञान व सत ज्ञान के विचार सीमित होते हुए असीमित हैं। जीवन में न बनावट हो न दिखावा हो। सब कुछ हो और कुछ न हो, यह अध्यात्म है। शब्द सीधे-सादे हैं, लेकिन अनाधिकारियों के लिए इनका समझना कड़ा पत्थर है। इसी कारण सत्संग की सबसे अधिक आवश्यकता है और उसके महत्व को महसूस कराया जाता है। इस अध्यात्म के गूढ़रहस्य न पुस्तकों के पढ़ने से हल होते हैं और न अक्ल लड़ाने से खुलते हैं। इसके द्वार के ताले की कुंजी सच्चे गुरु की संगत है। इसके सिवा वह और कुछ नहीं है।

—:o:—

जो जानता है यह कि मुझे ज्ञान हो गया।
तुम यह समझ लो, जान के अनजान हो गया॥
इसमें न असलियत की, समझ-बूझ है ज़रा।
दानादिली[1] के ज़ोम में, नादान हो गया॥

—:०:—

जो यह समझ रहा है कि मैं जानता नहीं।
जब जानता नहीं तो फिर मानता नहीं॥
बेहतर यह आदमी है कि है इसमें ज़रफियत[2]।
समझेगा वक्त पर यह, जो पहचानता नहीं॥

—:०:—

जो जानता है कहता है, मुझको नहीं है ज्ञान।
या गोमगो[3] का हाल! बना है वह बेज़बान॥
वह सच्चा ज्ञान वाला है, उसको तमीज़[4] है।
उसमें ज़रूर पाओगे कुछ असलियत की शान॥

—:०:—

आलिम है और इल्म का उसमें नहीं ग़रूर।
आक़िल है और नशा खिर्द[5] में नहीं है चूर॥
बाज़ोर[6] होके ज़ोर से रहता है दूर-दूर।
इसमें नहीं है अक़्ल व ख़िर्द[7] मन्दी का फ़ितूर॥

—:०:—

मुरशिद[8] के पास बैठो, तो पाओगे तुम ख़बर।
मंज़र[9] दिखायेगा वह अगर मिल गई नज़र॥
मुरशिद अगर नहीं है, न इस राह में चलो।
मंज़िल मुराद[10] दूर है और सख़्तपुर ख़तर[11]॥

एक मनुष्य किसी ऋषि के पास गया। ब्रह्म के विषय में

(१) बुद्धिमत्ता (२) पात्रता (३) सैन बैन (४) विवेक (५) बुद्धि (६) बलवान (७) बुद्धिमत्ता (८) दोष (९) गुरु (१०) दृश्य (११) इष्ट पद (१२) डर भय से भरी हुई।

प्रश्न किया। ऋषि चुप रहा। तीन बार हठ करके उसने पूछ-ताछ की। ऋषि ने मुँह नहीं खोला। जब चौथी बार उसने पूछा तो ऋषि ने कहा, "मित्र, जाओ अपना काम करो। मैंने तीन बार उत्तर दिया, तुम्हारी समझ में नहीं आया। ब्रह्म खामोशी (मौनता) है। यह सैन-बैन का विषय है। यहाँ शास्त्रार्थ और वाद-विवाद की सम्भावना नहीं है।"

जब कभी बुद्ध भगवान से किसी ने ब्रह्म के विषय में प्रश्न किया, वह या तो चुप रहे या टाल बताई। वह कहते भी तो क्या कहते। यह कहने-सुनने की बात नहीं है। यदि कोई मनुष्य संकेत, सैन-बैन और गोपनीय भेद को समझता है तो भले ही समझ ले वर्ना जो बात अनुभव सिद्ध है या अन्तरीय बोध से सम्बन्धित है, उस पर कोई क्या बातचीत करे।

—:o:—

सत्संग पर जो इतना ज़ोर दिया जाता है उसका यही कारण है। खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है। सत्संग के प्रभाव से दो दिलों के अन्दर एकसापन होना आरम्भ होता है। फिर दोनों दिल मिल जाते हैं और अन्त में मिल कर एक हो जाते हैं अर्थात् दोनों दिलों में एकसापन, समता और अन्त में एकता आ जाती है। सत्संग में एक का मानसिक प्रतिबिम्ब (अक्स) दूसरे पर पड़ता है। एक के मानसिक भावों को दूसरा भाँप जाता है और काम सरलता से बन जाता है। अध्यात्म (रूहानियत) प्राप्त करने का यही उपाय है।

—:o:—

यदि सत्संग कठिन हो तो कोई परिश्रम करके उसे प्राप्त करे। लेकिन कठिनाई तो यह है कि वह कठिन भी नहीं है। यदि कठिन नहीं है तो आसान होगा, सुगम होगा। सुगम तो है। इसमें सन्देह नहीं है। लेकिन जो वस्तु सुगम होती है वह

प्राकृतिक और स्वाभाविक होती है, और अधिकता से होती है। इसकी ओर मनुष्य का ध्यान आकर्षित नहीं होता। यह कुछ विचित्र बात है। कठिनाई से प्रीति होना चित्त का स्वभाव बन जाता है। कमी के साथ मिलने वाली वस्तु का आदर किया जाता है। परिणाम यह होता है कि सुगम (वस्तु) का भी धीरे-धीरे दुर्गम या कठिन होने का विश्वास होने लग जाता है। वह हाथों में रहते हुये भी अप्राप्त, अल्प प्राप्त और कभी-कभी प्राप्त होने वाली समझ ली जाती हैं। अध्यात्म भी इसी प्रकार का विषय बन रहा है।

—:o:—

सौ शिक्षाओं की एक शिक्षा यह है कि सुगमता और सरलता को ग्रहण करने की आदत सीखो। सीखना या प्राप्त करना भी उसका कुछ नहीं है। वह तो स्वाभाविक है। तब तुम इसे न केवल समझने लगोगे बल्कि यह तुम्हारे हर समय के व्यवहार में दिखाई पड़ने लगेगी।

—:o:—

सरल व सुगम बातों की ओर पहिले ध्यान दो। सरल व सुगम काम करने लग जाओ। फिर वही सरल व सुगम वस्तुयें बड़ी बनकर आश्चर्य का कारण होने लगेगी।

एक-एक बूंद इकट्ठा करते चलो, तालाब भर लोगे। एक-एक कंकड़ इकट्ठा करके धरते चलो पहाड़ बन जायगा। एक-एक दाना चुन चुन कर किसी स्थान पर रखना आरम्भ कर दो, एक ढेर लग जायगा।

—:o:—

प्रकृति में हर काम की व्यवस्था (इन्तज़ाम) इसी तरह हुआ करती है। यहाँ कठिन मार्ग ग्रहण करने और कठिन परिश्रम की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। स्वाभाविक बात और स्वा-

भाविक कर्म सब सरल और सुगम होते हैं और उल्टा करने से वे कठिन हो जाते हैं।

पहाड़ से उतरना सरल और पहाड़ पर चढ़ना कठिन है।

सच बोलना सहज और अधिक स्वाभाविक है। झूठ बोलना कठिन है और पेचीदा है। सच बोलने में परिश्रम नहीं करना पड़ता। झूठ बोलने में दिक़्क़त उठानी पड़ती है।

प्रीति करना सहज है और शत्रुता करने में कठिनाई है। राग (रग़ब) सहज और द्वेष कठिन है।

तमाम सुल्टी और सीधी बातें सरल और सहज होती हैं। और उनके प्रतिकूल तमाम उल्टी और टेढ़ी बातें कठिन होती हैं।

आत्मिक ज्ञान (जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है कि सत्संग द्वारा आत्म ज्ञान की प्राप्ति सहज है) सुगम मार्ग ग्रहण करने, सत्संग के प्रभाव को सहज-सहज में समझने और (सत्संग द्वारा ही आत्म ज्ञान की प्राप्ति) सहज प्रयत्न करने में है। दुनियावी वस्तुओं के प्राप्त करने में बहुत कठिनाई होती है, कठिन मार्ग से चलना और कठिन प्रयत्न करना पड़ता है।

राधास्वामी मत इन्हीं छोटी-छोटी बातों को सरलता से हृदयांकित कराता हुआ मनुष्य को अध्यात्मिक (रूहनी) पुरुष बनाने का दावा करता है। केवल एक बार उसके सिद्धान्त को, इसूल को या नियम को समझलो। उसको आचारण में लाने वाले या आमिल बन जाओ। बार-बार समझने और समझाने की आवश्यकता नहीं है। केवल एक बार समझकर काम में लग जाना काफ़ी है।

कठिन मार्ग को छोड़ कर सुगम मार्ग पर चलो। काम को चित लगा कर करो यही असली उपाय है चित्त क्या वस्तु है इसको समझलो। चित्त (दिल) को लगाना या एकाग्र करना ही

ईश्वर कृपा है। बेदिली (चित्त का न लगाना) और बद दिली (ईर्षा द्वेष) दूर हों जाय तब चित्तरूपी पात्र आनन्द से भर जायगा। ऐ प्यारे! यह आत्म-ज्ञान का रहस्य है। यदि यह समझ में आ जाय तो समझ लो कि उसमें विवेक है। यदि सहज मार्ग ग्रहण करने की आदत बनाई तो सब दिक्कतें सरलता से चली जाती हैं और यदि कठिन मार्ग से ही चलना है तो फिर दिल में अत्यन्त कठोरता उत्पन्न हो जायगी। यही राधास्वामी मत है वह और कुछ नहीं है।

—:o:—

आत्म विद्या न तो 'अनलहक' (मैं खुदा हूँ) कहने में है। न 'अहम् ब्रह्मास्मि' कहने में है। यह कोई और ही वस्तु है।

दुनिया में अनगिनत पंथ और सम्प्रदाय बने। सम्भव है इनका आदर्श पहिले आत्मिक ज्ञान रहा हो। सिद्धान्त समझ में नहीं आया। किसी को बनावटी सभ्यता और सदाचार का सबक हुआ; किसी को पुरानी रीति-रिवाज के पालन करने के विचार ने दबोच लिया। ये सब के सब या तो सामाजिक धर्म बन गये या स्वर्ग नर्क के झंझट ने उन्हें पूर्णतया मार दिया और सब के सब आत्मिक विद्या से वंचित रह गये। विशेष-विशेष व्यक्तियों की बात हम नहीं कहते। सामान्य तथा साधारण लोगों को दृष्टि में रखते हैं। स्वयम् ही देखकर अपने लिये परिणाम निकाल लो।

—:o:—

न इनको शैतान की समझ है,
न इनमें रहमान[1] की समझ है।

---

(१) दयालु।

न इनको अज्ञान की समझ है,
न इनमें कुछ ज्ञान की समझ है ॥
किसी को सौदा है हूर[२] का,
और किसी को जन्नत[३] की जुस्तजू[४] है।
किसी को दोज़ख[५] के डर ने मारा,
किसी को शैतां की गुफ्तगू है ॥
हरमपरस्ती[६] में फँस के खो बैठे,
दीन व ईमाँ प्यारे भाई।
यह बुतपरस्ती है और क्या है ?
ज़रा भी इसकी समझ न आई ॥
कोई तवाफ़ी[७] है मन्दिरों का,
वह शंख की धुनि सुना रहा है।
कोई अज़ानी है मसजिदों का,
अज़ाँ का गीत गा रहा है ॥
खुदा कहाँ है ? मिलेगा कैसे ?
ख़याल उसका नहीं दिलों में।
वह क्या है ? कैसा है ? किस लिये है ?
कमाल उसका नहीं दिलों में ॥

—:o:—

हम किसी की निन्दा नहीं करते, न यह हमारा नियम है। दिल दुखाने के पाप से सदा बचते रहते हैं। जो कुछ कहते हैं वह केवल दृष्टि के ऊँचे करने की नीयत से कहते हैं। हमारा मार्ग यदि कोई है तो वह प्रेम मार्ग ही है। न हम हिन्दू हैं न मुसलमान। यदि ध्यानपूर्वक हमारे आचार और व्यवहार को देखोगे तो हमको सच्चा हिन्दू और सच्चा मुसलमान पाओगे।

(२) अपसरा (३) स्वर्ग (४) चाह (५) नर्क (६) स्त्री पूजा (७) परिक्रमा करने वाला।

यह सब के सब हमारे ही रूप हैं। वास्तव में हम इस प्रकार की चेतावनी दे-देकर अपने आप ही को चेता रहे हैं।

लोग कहते हैं कि हम 'श्रुति मार्ग' पर चलते हैं। यद्यपि हमारे इन मित्रों में से एक को भी न 'श्रुति' की समझ है न 'मार्ग' की। यह छन्द और मन्त्रों के शब्दों को ही 'श्रुति' समझ बैठे हैं और इसलिये असलीयत की समझ से सहस्रों कोसों की दूरी पर जा पड़े।

'श्रुति' का अर्थ सूफ़ियों के यहाँ 'समा' है। 'श्रुति' 'समा' है, राग है, ध्वनि है। जो सुनी जाय वह 'श्रुति' है।

क्या इनमें से किसी ने कभी 'श्रुति' को भी सुना है? एक ने भी नहीं। फिर यह कैसे 'श्रुति मार्ग' के अनुयायी हुए। 'श्रुति' का कभी कोई व्यक्ति खंडन नहीं कर सकता। यह बिल्कुल असम्भव है। लेकिन इनकी 'श्रुति' का खंडन तो एक-एक बच्चा कर सकेगा और कर देगा। बात कुछ है और यह समझते कुछ हैं।

—:o:—

'श्रुति' का सम्बन्ध केवल अनुभव या आन्तरिक बोध से होता है। यह केवल अभ्यासियों का मार्ग है जिसे वह सुनते हैं, दूसरा नहीं सुनता। फिर कोई उसका खंडन कैसे करेगा। यह 'श्रुति' क्या वस्तु है? राधास्वामी मत की नींव इसी पर ठहरी है। यदि ये लोग सत्संग में आते तो हम इनको सुगमता से समझा दिये होते। हठधर्मी और पक्षपात में जकड़े हुए लोगों को कोई कैसे समझाये और क्या समझाये? इसलिये चुप रहने के सिवाय और कोई उपाय दिखाई नहीं देता।

—:o:—

आसमां पर दे क़दम अपना जमा।
तब सुनेगा आसमानी तू सदा ॥१॥

जुरअत और हिम्मत से कुछ तू काम ले।
फिर खुशी से श्रुति का तू नाम ले ॥२॥
'श्रुति' धुन है घट की ऐ मेरे अज़ीज़।
घट में दाखिल हो तो पायेगा तमीज़ ॥३॥
घट में है यह 'श्रुति' तेरे घट में है।
तू न समझेगा पड़ा खट-पट में है ॥४॥
श्रुति है यह, वही[1] और इलहाम[2] है।
हिस्से बातिन[3] ही से उसका काम है ॥५॥
आती है हर वक्त गरदूँ[4] से सदा[5]।
तू सुनेगा कान खोल अपने ज़रा ॥६॥
इसका सुनना सहल और आसान है।
क्या सुने जिसमें नहीं अरमान है ॥७॥
वेद है यह श्रुति, श्रुति ज्ञान है।
सुन उसे घट में अगर इन्सान है ॥८॥
जाके मुरशिद[6] से तू ले उसका पता।
श्रुति का पायेगा घट में रास्ता ॥९॥
गूँजती है सुष्मना नाड़ी में धुन।
कान को अपने लगा रोज़ उसको सुन ॥१०॥
पायेगा रुहानियत के संस्कार।
राज़ बातिन होंगे तुझ पर आशिकार[7] ॥११॥
भू, भुवः, स्वः और महः हैं आस्मां।
आस्मां ही जनः, तप, सत् है यहाँ ॥१२॥
पहले आ और चढ़ ज़रा अफ़लाक[8] पर।
क्यों पड़ा है आह! फ़रशे खाक पर ॥१३॥

---

(१) ईश्वरीय संदेश (२) प्रेरणा (३) आन्तरिक बोध (४) आकाश (५) ध्वनि (६) गुरू (७) प्रगट।

श्रुति की धुन आसमानी है सदा[५]।
गूँजती है रात-दिन घट में सदा[५] ॥१४॥
घट में आ और घट में सुन आवाज़ को।
यह है श्रुति देख साज़ व बाज़ को ॥१५॥

—:o:—

उपनिषदों ने उसी को उद्गीत (उधर का गीत) का नाम दिया है। किसी-किसी ने उसे 'प्रणव' बताया, जिसका अक्षरीय रूप 'ओ३म्' है। 'प्रणव' वह इस कारण से है कि उसका उच्चारण जिह्वा से नहीं होता, बल्कि उसका सम्बन्ध प्राण से है।

योगी इसी को 'अनाहतनाद' या 'अनहद राग' कहते हैं। सूफ़ी इसी को 'सूते सरमद' 'सूते नसीरा' अथवा रुहानी राग कहते हैं और इसके अभ्यास को "शग़ल सुल्तानुलज़्कार" कहते हैं।

हम तुमको केवल संकेत दे रहे हैं। (आत्मिक ज्ञान) के ग्रन्थों, उपनिषदों या मन्त्रों में केवल इशारे ही इशारे मौजूद हैं।

यदि विशेष व संतोष जनक व्याख्या चाहते हो तो राधास्वामी मत के सत्संग से लाभ उठाओ।

आत्मिक भावना को इस साधन से हरकत और तेज़ी मिलती है। चूँकि इसका अभ्यास सहज है इसलिये इसे सहज योग का नाम दिया गया है। जवान, बूढ़ा, मर्द, औरत, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, बौद्ध, जैनी, यहूदी और संसार की सारी जातियों के लोग इसे बिना परिश्रम के घर में रहकर कर सकते हैं! न घरबार छोड़ने का आदेश होता है और न नौकरी व पेशा छोड़ने का। राधास्वामी मत में इस

आत्मिक विद्या के सम्बन्ध में किसी के साथ अपने पराये का बर्ताव नहीं किया जाता और न धर्म के बदलने का ध्यान दिलाया जाता है। हिन्दू मुसलमान आदि कोई भी हो, सब इससे लाभ उठा सकते हैं।

—:o:—

भेद-भाव तमाम दुःखों और पीड़ाओं का कारण है और भेद-भाव ही परस्पर के कोप का कारण होता है। दुनिया में कोई भी व्यक्ति पराया नहीं है इसलिये व्यर्थ में इर्षा, द्वेष और बैर क्यों करता है। सबसे मित्रता का बर्ताव हो। राजा और रंक सब एक हैं। तुमको देह-दृष्टि न रखनी चाहिये बल्कि आत्मा पर रखनी चाहिये जो सारी देहों में एक है। यदि आत्मज्ञान की ओर कुछ ध्यान है तो सब भेद-भाव और भेद-भाव की बातों को त्याग देना चाहिये। इसी एक बात को कि सारी देहों में एक ही आत्मा है, हर समय स्मरण रखना चाहिये। इससे तुझे हर समय आनन्द मिलता रहेगा। भेद-भाव की वस्तु देश और काल है और भेद-भाव ही संशय और भ्रम का कारण है। भेद-भाव ही आत्मा की एकता में द्वै (द्वैत-भाव) पैदा करने वाला है। यही लड़ाई झगड़े की जड़ है। मजहबों के भेद-भाव में पड़ने वाले हठधर्मी में पड़ कर व्यर्थ सड़ जाते हैं। यदि आत्मा की एकता का कुछ ख्याल है तो इन झगड़ों से बचो वर्ना फिर दुख ही दुख है।

—:o:—

मेरा एक सत्संगी भाई पं० फ़क़ीरचन्द है जो फ़क़ीर कहलाता है। सूरत और स्वभाव दोनों की दृष्टि से वह फ़क़ीर है। सुनाम (पटियाले) में रहता है। मुझे वहाँ बुलाया। मैं वहाँ गया। ला० देवीदयाल एडवोकेट के घर पर ठहरा। बाबा चूहड़दास की समाधि पर सत्संग होता रहा। बड़ा आनन्द रहा।

अधिक दिनों तक कहीं रहना न पसन्द है न अच्छा है न स्वीकार है। एक दिन उठा और बोरिया बिस्तर समेट कर सबसे बिदा होने लगा।

दरवेश[1] रवां[2] रहे तो बहेतर।
आबे[3] दरिया बहे[4] तो बहेतर॥

'फ़क़ीर' ने इच्छा प्रगट की कि कोई ऐसी छोटी सी पुस्तक लिख दो जिसे सब लोग सुगमता से समझ सकें। विभिन्न स्थानों में घूमता हुआ राधास्वामी धाम में आया। यहाँ अवकाश ही अवकाश है। लेखनी उठाई और सफेद कागज़ के पन्ने स्याही के रंग से रंग दिये। पुस्तक बुरी हैं या अच्छी इसका निर्णय स्वयम् करें। यह जैसी है वैसी है। तब भी यह आशा है कि जो लोग पढ़ेंगे उन्हें कुछ न कुछ आनन्द प्राप्त होगा।

यदि किसी पढ़ने वाले का ध्यान आत्मा की ओर गया और आत्म-ज्ञान प्राप्त करने की उत्कण्ठा हुई तो यह बड़ी सहायक होगी। लेकिन मेरी अन्तिम शिक्षा यह है—

राहे खुदा में आजा, तू अपने सर के बल चल।
है नाक का वह रस्ता, सीधा न कुछ है हलचल॥
पोथी में पत्रों में, राज़[5] खुदा नहीं है।
ये खन्दकें[6] हैं गहरी, तू सोचकर सँभल चल॥
जब तक मिले न सतगुरु, इस राह में न आना।
धोके में तू पड़ेगा, हरगिज़ न तू मचल चल॥

शिवव्रतलाल

राधास्वामी धाम (राज बनारस)

---

(१) साधू। (२) घूमता फिरता। (३) जल की नदी। (४) बहती हुई। (५) भेंद (६) खाई।

❀ प्रार्थना ❀

दाया ! दाया !! दाया !!!
सत्गुरु कीजे जन पर दाया ।।टेक।।
प्रेम भाव रहे मन में छाया, करे अकाज न जग की माया ।
काल करम ने अति भरमाया, भूल भरम से दुःख बहु पाया ।।
भिक्षा माँगन आया ।।१।।

तीन ताप से रहूँ अकुलाना, मेरा कहीं न ठौर ठिकाना ।
देख फिरा सब का स्थाना, अब तो सत्गुरु दीजे दाना ।।
ध्यान चरन में लाया ।।२।।

उमंग प्रीत बाढ़े मन छिन-छिन, सुमिरूं नाम तुम्हारा गिन-गिन ।
लौ लागी रहे चरनों दिन-दिन, देखूं रूप न जग का भिन-भिन ।।
रहूँ असोच अमाया ।।३।।

ज्ञान योग की अकथ कहानी, समझ न आवै रहे हैरानी ।
जप तप संयम एक न जानी, सुनूं तुम्हारी नित मृदु बानी ।।
हिया जिया उमगाया ।।४।।

तुम तो आये जीव उबारन, नाम धरा अपना जग तारन ।
प्रगट भये हो हमरे कारन, हम पापी तुम पतित उधारन ।।
राधास्वामी भेद बताया ।।५।।

—:o:—

आत्मिक प्राइमर उर्फ आत्मिक ज्ञान प्रकाश

प्रथम भाग

प्रथम सन्देश

ग्रहण और त्याग

१—ग्रहण कहते हैं धारण करने को और त्याग कहते हैं छोड़ने को।

२—क्या वस्तु छोड़ना है और क्या वस्तु ग्रहण करना है?

३—न किसी वस्तु को छोड़ना है, न किसी को ग्रहण करना है। छोड़ना निस्सम्बन्धित होना है और ग्रहण करना सम्बन्धित होना है। इसका अर्थ केवल इतना ही है।

४—सच्चाई को ग्रहण करो और झूठ को छोड़ो। प्रेम और प्रीति सच्चाई है। घृणा व द्वेष झूठ है।

५—सच बोलो। सच्चा व्यवहार करो। झूठ न बोलो। न झूठ का व्यवहार करो।

६—सच बोलना सहल है और झूठ बोलना कठिन है। दोनों बातें आदत डालने से आती हैं। सच बोलने की आदत डालो सच्चे हो जाओगे। झूठ बोलने की आदत डालोगे तो झूठे बन जाओगे। प्रारम्भ में केवल इसी बात का ध्यान रखो। यह तुम्हारे सदाचार और सदाचारी जीवन का मूल है।

७—सच्चाई अच्छी है। झूठ बुरा है। अच्छाई को धारण करो और बुराई को छोड़ो।

८— साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय साँच है, ताके हृदय आप॥

दूसरा सन्देश

प्रेम, क्षमा, खुशी और उदासीनता

१—सबसे मिलो-जुलो। मीठी बातें बोलो। कड़ुई बातें जिह्वा से न निकालो। यह प्रेम व अनुराग है।

२—अगर किसी से भूल-चूक होती है, तो कठोर व्यवहार न करो! उसे निर्बल समझ कर माफ़ करो यह 'क्षमा' है।

३—सच्चों को देखकर खुश हो। स्वयम् सच बोल कर खुश रहो। और दुःख तुम से अलग होता चलेगा। यह 'खुशी' है।

४—किसी के पीछे न पड़ो। अगर किसी को सच से प्यार नहीं है और वह उसे ग्रहण नहीं करता तो उससे उलझना, वाद-विवाद करना या लड़ना-झगड़ना अच्छा नहीं है। तुमको उससे अलग-थलग होकर रहना चाहिए। यह बेपरवाई या उदासीनता है।

५—घृणा को घृणा से दबाया नहीं जा सकता। घृणा को प्रेम से दूर किया जा सकता है।

६—मनुष्य में दया की आदत होनी चाहिए। सबसे त्रुटियाँ होती हैं। उन पर दया करो। उनके पीछे कभी न पड़ो। दयाभाव से उनका उत्साह बढ़ाओ।

७—खुश रहने की आदत डालो। जो खुश रहता है वह सदा सीधे रास्ते पर चलता है। अधिक काम करता है। जो खुश नहीं रहता, दुःखी होता है। उसका कोई काम नहीं बनता।

८—अपना सुधार करना अच्छा है। तुम अच्छे हो जाओ, सारा जगत अच्छा हो जायगा। अगर कोई अपना सुधार नहीं करता तो उससे बचते रहना चाहिए।

९—आप भले तो जग भला, आप बुरे जग बुरा हुआ।
आप खुशी तो जग खुशी, आप दुखी तो जग दुखी बना।१।

प्रेम भाव मन में बसे, चलिये प्रेम के पन्थ।
प्रेम पन्थ का सार है; क्यों पढ़िये सौ ग्रन्थ ॥२॥
प्रेम भाव से जो मिले, तासों मिलिये धाय।
प्रेम भाव जो तज चले, तासों मिले बलाय ॥३॥
दया क्षमा चित में बसे, दया धरम का मूल।
दया क्षमा जिसमें नहीं, वह पंछी चंडूल ॥४॥

—:o:—

तीसरा सन्देश

तुम क्या हो ?

१—तुम क्या हो ? यह प्रश्न तुम अपने मन से आप करो और बहुधा करते रहो। सम्भव है कि इसका उत्तर कभी तुमको सत् के मार्ग में डाल दे।

२—हम यह नहीं पूछते कि तुम्हारा अंश-वंश क्या है ? अथवा तुम किस जाति, पंथ और सम्प्रदाय से हो ? इनसे हमको सम्बन्ध नहीं है और न नित्य-प्रति के व्यवहारिक जगत में यह प्रश्न आवश्यक है। इसकी जगह पर यदि तुम यह उत्तर दो कि हम 'इन्सान' हैं तो हमको सुनकर खुशी मिलेगी। हम केवल यह उत्तर चाहते हैं।

३—यदि 'इन्सान' हो तो 'इन्सानियत' का मार्ग ग्रहण करो। इन्सान बनो। इन्सान होकर रहो।

आदमी में आदमीयत चाहिये।
गर नहीं सन्दल[1] में बू[2] वह चोब[3] है ॥

४—'इन्स' और 'उन्स' दोनों शब्दों की धातु (माद्दा) एक ही है। 'इन्स' अरबी भाषा में 'इन्सान' को कहते हैं और

(१) चन्दन (२) गन्ध (३) लकड़ी।

'उन्स' मिलनसारी को कहते हैं। जिसमें मिलनसारी हो वह 'इन्सान' है। मिलनसारी की आदत का सम्बन्ध सद्व्यवहार से है। इससे यह सिद्ध हुआ कि इन्सान को सदाचारी होना चाहिए और दूसरों के साथ सद्व्यवहार करना चाहिए।

५—जिसमें 'उन्स' या 'उन्सियत' न हो, सम्भवतः तुम उसे इन्सान कहना पसन्द न करोगे।

६—इंसान हो तो हर बात में इंसान बनो और हर बात में इन्सान बनकर रहो। इन्सानी सूरत में आँख, कान और नाक रखने वाले को इन्सान नहीं कहते। यह इन्द्रियाँ तो पत्थर की मूर्ति और मिट्टी, लकड़ी, काँसे और पीतल की मूर्तियों में भी होती हैं। क्या तुम उनको इन्सान कहोगे ?

७—इन्सान प्रकृति में सबसे श्रेष्ठ और उच्च बनाया गया है। यह तुम जानते भी हो। सज्जनता तथा बड़प्पन का उच्चतम् अंश अधिकतर सद्व्यवहार और सदाचार में रहता है।

८—इंसान के सद्व्यवहार का और सदाचार का श्रेष्ठ रूप 'ज़ब्त' (धृति) है जिसका अर्थ है जितेन्द्रिय—देह, मन और अहंकार को जीतना। इसे जीतने के बहुत से रूप हैं। जिसमें ज़ब्त (जीतने) की आदत होती है वह मज़बूत होता है। वह शरीर, मन तथा मस्तिष्क को क़ाबू में रखता है। जिसमें यह गुण देखो, समझ लो वह 'इंसान' है। नहीं तो इन्सान की सूरत रखता हुआ पशु से भी गिरा हुआ है।

—:o:—

चौथा सन्देश

'मनुष्य'

१—संस्कृत भाषा में इन्सान के लिए जो बोलचाल का शब्द

प्रयोग किया गया है वह अर्थ से भरा हुआ है और सार-गर्भित है। संस्कृत में आदमी को मनुष्य कहते हैं। इसकी धातु 'मन' या 'मनु' है। मन सोचने व समझने की क्रिया को कहते हैं। मनुष्य=मन+तप+यक् (मनु की सन्तान बढ़ाने वाला) है। जिसमें मन हो और जो मनु की सन्तान को बढ़ावे वह मनुष्य है।

२—किसी में किसी मुख्य गुण की अधिक विशेषता होती है। मनुष्य की विशेषता यह है कि उसमें मानसिक शक्ति अधिक हो। इसका हृदय विशाल हो। हृदय की संकीर्णता न हो और वह अपनी मानसिक शक्ति का बढ़ाने वाला हो।

३—यदि किसी में यह गुण देख लो तो समझ लो कि वह मनुष्य है। यदि कोई मनुष्य इससे रहित हो तो सम्भवतः वह चाहे आदमी बन रहा हो लेकिन अभी तक मनुष्य नहीं हुआ है।

४—कहावत है—कोई फ़कीर किसी धनवान के यहाँ भीख माँगने गया। इस धनवान ने कहा, "बाबा! आदमी नहीं है, आ जाय तो तुम्हें कुछ दे।" फ़कीर बोला, "थोड़ी देर के लिये तुम ही आदमी बन जाओ।" इस संक्षेप कहावत में मनुष्य की हार्दिक शक्ति की ओर संकेत है, जो देने या लाभ पहुँचाने से सम्बन्ध रखती है।

५—'देना' अथवा दान करना मनुष्य का स्वभाव है। मनुष्य का गुण ही यह है कि जो अपना हृदय दूसरों को दे अर्थात् दूसरों से प्रेम करे। इस तरह हृदय देने से हृदय आप से आप बढ़ता चलेगा और एक दिन आदमी बन जायगा।

६—घृणा को हृदय में स्थान न दो; प्रेम को दो। यदि घृणा के भावों को स्थान दोगे तो वह सिकुड़ता रहेगा और इसमें

तंगी आयेगी। यदि प्रेम को हृदय में स्थान दोगे तो वह बढ़ता चलेगा। इसी हार्दिक भाव को बढ़ाने वाला ही मनुष्य बनता और कहलाता है।

७— दिल को दो, दिलदार वो दिलबर बनो।
दिल दो-दिल देने से तुम बेहतर बनो ॥१॥
दिल के देने की जो, आदत भा गई।
बशरियत[1] की शान खुद ही आ गई ॥२॥
दिल को दो दिल, दिल में दिल की राह है।
खुश है वह दिल, जिसको दिल की चाह है ॥३॥
दिल दुखाने से बचो, यह है गुनाह।
ठेस दिल को देते हो, होगे तबाह ॥४॥
जिसने दिल को दिल दिया, दिलवर बना।
दिल दुखा जिससे, वह उत्पाती बना ॥५॥

८—मैं एक बार मुरादाबाद गया था। मेरे सामने एक फ़क़ीर ने किसी दुकानदार से भिक्षा माँगी। वह उसे पैसे देने लगा। फ़क़ीर ने उससे पूछा, "तू किसका बैल है?" दुकानदार तिलमिलाया, घबराया, उत्तर नहीं बन आया। उसकी स्त्री पास बैठी हुई थी। फ़क़ीर ने उसकी तरफ संकेत करके कहा, "इस माई से पूछकर उत्तर दे।" स्त्री ने उसके कान में झुककर कहा, "फ़क़ीर जानना चाहता है कि तू किस मार्ग का अनुयायी है।" तब उसने कहा, "बाबा! मैं नानक पन्थी हूँ।" फ़क़ीर हँसा, "तू नानक का बैल है। अच्छा भिक्षा दे।" भिक्षा ली और वहाँ से चलता बना।

९—इस कथन में तुमको असलियत की शिक्षा मिलेगी। जो बिना समझे-बूझे किसी गुरु के चेले होते हैं, वह वास्तव

(१) मनुष्यता।

में चेले नहीं हैं, उसके बैल हैं अथवा बोझ ढोने के पशु हैं। अब तक चेला होना तो दूर, वह मनुष्य तक तो बने नहीं।

१०—धर्म, पन्थ या मार्ग की हैसियत मदरसे की है। तुम मदरसे में जाकर शिक्षा प्राप्त करो और अपना काम बनाओ। मदरसे को पक्षपात या धिक्कार का हार न बनाओ। तब तुम मनुष्य बन जाओगे और तुम्हारा हृदय विशाल और विस्तृत बन जायगा। दूसरी दशा में यह सम्भव नहीं है।

११—संकीर्ण हृदय वाले या पक्षपाती कभी न बनो। शरीर के वश में होना तो भी बेहतर है, परन्तु मन के वश होना बड़ी भारी त्रुटि है। पन्थ में प्रवेश करने का अभिप्राय केवल यह है कि हृदय विशाल होता चले। अन्तःकरण में ज्ञान आता जाय और दृष्टि विस्तृत होती जाय। यदि तुम व्यर्थ में हठधर्मी बने तो पासा उलटा पड़ेगा और बुरे बन जाओगे। लाभ कुछ नहीं होगा।

—:o:—

पाँचवाँ सन्देश

भ्रम

१—देख लो प्रत्येक मनुष्य एक नहीं बल्कि हज़ारों प्रकार के भ्रमों में फँसा हुआ है। कोई कहता है कि मैं अमुक धर्म का अनुयायी, अमुक जाति का मेम्बर और अमुक गुरू का चेला हूँ। भोले-भाले लोगो! यह विचार सब के सब भ्रम व कल्पनायें हैं।

२—न कोई वास्तविकता की दृष्टि से हिन्दू है, न मुसलमान है, न गुरू है न चेला है; न पति है न पत्नी है। यह कल्पनाओं और झूठे विश्वासों के जाल हैं।

३—एक व्यक्ति आज मुसलमान है। कल ईसाई हो गया। वह मुसलमान नहीं रहा। ईसाई हो गया। अगर मुसलमानियत कोई वास्तविक या सच्ची वस्तु होती तो वह दूर कैसे होती? कल्पित थी, इस कारण उसकी जड़ आसानी से कट गई।

कोई आज किसी का चेला है। कल दूसरे का चेला हुआ। अब पहले का चेला तो नहीं रहा। दूसरे का हो गया। कल्पित बात थी। दम के दम में खो गई। स्त्री पहले कुछ थी, धर्म छोड़ बैठी अथवा तलाक़ हो गई। अब न वह पत्नी रही, न वह पुरुष उसका पति रहा। मनगढ़ंत, मनमानी, व्यर्थ और कल्पित बात थी, इसलिये सुगमता से बदल गई।

४—असलियत शरीर में नहीं है, आत्मा में है। शरीर क्षण-प्रतिक्षण बदलता है। आत्मा नहीं बदलती। शरीर कल्पित है, आत्मा वास्तविक है। शरीर क्या है? मन क्या है? और आत्मा क्या है? इन ही बातों के समझने के लिए गुरू से सम्बन्ध जोड़ा जाता है। यह शीघ्र समझ में नहीं आतीं। धीरे-धीरे इनकी समझ आती है और गुरू की संगत का लाभ व प्रभाव उनके समझाने में सहायक होता है।

५—तुम चाहे किसी पन्थ, समाज, धर्म या सम्प्रदाय के हो, राधास्वामी मत में यह प्रश्न नहीं किया जाता और न धर्म परिवर्तन या समाज परिवर्तन की दीक्षा दी जाती है। मन्तव्य तो आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने से है जो हर मनुष्य का उत्तराधिकार है। उसे प्राप्त करो और बस!

६—किसी न किसी समाज से तुमको सम्बन्ध रखना ही होगा। एक के नियम छोड़े, दूसरे के सीखे। बात क्या हुई? दो सपने की एक रस्सी गले से उतारी, दूसरी डाल ली।

रस्सी तो रस्सी है, चाहे वह लोहे की हो या सोने की। एक के दासपने को छुड़ाकर दूसरे के दासपने में लाना ध्येय नहीं है। ध्येय तो कुछ और है। इन कल्पनाओं का भ्रम छोड़कर ध्येय की ओर दृष्टि रखो।

७—आत्म-ज्ञान की प्राप्ति में धर्म छोड़ने का निर्देश नहीं है, बल्कि भ्रमों के छोड़ने का आदेश है। यह भ्रम ही मन की चंचलता व चपलता के कारण बने हुए हैं। वहम का इलाज लुकमान के पास भी नहीं था। इसकी औषधि साधुओं के पास है बशर्ते कि साधू सच्चा हो। उसने साधुता को स्वांग या जीविका उपार्जन का साधन न बना रखा हो। यदि कोई तीव्र बुद्धि रखता है और सच्चा खोजी है तो इसकी पहिचान बड़ी सुगमता से कर सकता है।

८—राधास्वामी मत में केवल मन के समझाने-बुझाने का प्रबन्ध है। जिसने मन को समझ लिया, उसने सब-कुछ समझ लिया। जिसने मन को नहीं समझा, उसने कुछ भी नहीं समझा।

९—ऐसे लोगों को जिनको शरीर ही सब-कुछ है, उनको हर समय शरीर की पूजा का ध्यान रहता है। वे रात-दिन उसके पालन-पोषण में लगे रहते हैं।

ऐसे लोगों को जिनको मन ही सब-कुछ है, उनकी दृष्टि मन की ओर रहती है। मन को प्रसन्न करना उनका धर्म है। वे मानसिक आहार तथा बुद्धि सम्बन्धी खाने-पीने के स्वादी बने रहते हैं अर्थात् ऐसी बातों के पीछे पड़े रहते हैं, जिससे उनके मन को प्रसन्नता हो।

आत्मा जिज्ञासू का ध्यान आत्मा (रूह) की ओर रहता है। उसका मार्ग आत्मा की पूजा है। उसे आत्मिक

आहार की चिन्ता रहती है। वह उसी का उत्सुक व इच्छुक बना रहता है।

यह तीन प्रकार के मनुष्य हैं। देह का पुजारी निकृष्ट या निचला है। मन का पुजारी मनुष्य मध्य का है और आत्मा का पुजारी मनुष्य ऊँचा है।

१०—तीन वस्तु हैं:—शरीर, मन और आत्मा और तीनों के तीन आहार हैं। ये तीनों की तीन विशेषतायें हैं। शरीर का आहार दाना-पानी ताकि उसका अस्तित्व बना रहे। मन का आहार विद्या बुद्धि है ताकि वह धैर्यवान व संयमी रहे। आत्मा का आहार आनन्द है, और आत्मा का नाम ही आनन्द है।

सत, चित, आनन्द ये तीन अस्तित्व हैं, जिनकी समझ सत्संग में दी जाती है। सत्संग करो, तब उन्हें समझोगे। गुरू की संगत के बिना उनका समझ में आना कठिन तथा टेढ़ी खीर होगी।

११—समझने की असल वस्तु मन है। देह इस पार है आत्मा पल्ली पार है और मन दोनों के बीच पुल के समान है। यह वैतरणी का पुल है। यह पुल ऐसा है जो सीधा गया है।

जो इस पर चढ़ेगा वह वार-पार (देह और आत्मा) दोनों को देख सकेगा। फिर स्वयम् ही समझ-बूझ वाला होकर परिणाम निकालने पर जायगा कि आया उसे निचला बनना है या ऊँचा अथवा मन की गुत्थियों में उलझा रहना है।

मनुष्य चूँकि मन वाला है, इसकी शिक्षा राधास्वामी मत में मन ही से प्रारम्भ की जाती है।

—:o:—

दूसरा भाग

प्रथम सन्देश

सवाल जवाब

—:o:—

१—यदि कोई मनुष्य किसी से पूछे कि तुमको सबसे अधिक प्रबल इच्छा किस वस्तु की है तो क्या तुम समझते हो कि इसका जवाब क्या होगा ? कोई कहेगा कि हम धन चाहते हैं, कोई कहेगा कि हम विद्या, बुद्धि चाहते हैं। किसी को स्वास्थ्य की इच्छा होगी और कोई-कोई आदमी यह भी कहेगा कि हमको सबसे अधिक इच्छा ईश्वर की है।

१—अपनी समझ में यह सब-के-सब सच्चे हैं। लेकिन हमारी समझ में यह सब-के-सब झूँठे हैं। झूँठे इस वजह से नहीं हैं कि वे झूँठ बोल रहे हैं। नहीं, नहीं, झूँठ बोलने की दृष्टि से हम उन्हें झूँठा नहीं कहते बल्कि इस वजह से उन्हें झूँठा कह रहे हैं कि उन्होंने सच्चाई को नहीं समझा। सच्चा उत्तर नहीं दिया। कहना था कुछ और, और कह गये कुछ और। उनका कहना बिना सोचे-समझे था। इसलिए वह झूँठ था और वह झूँठ कह गये।

३—अब इनसे दुबारा उन्हीं के उत्तर का उलट-फेर करके उनसे सवाल करो।

भाई ! तुम धन किस लिये चाहते हो ?

विद्या और बुद्धि की चाह क्यों है ?

स्वास्थ्य की इच्छा क्यों है ?

अगर ईश्वर ही की चाहना है तो क्यों है ? अब इसका उत्तर क्या होगा ? बहुत से लोग इस सवाल ही को

सुनकर घबरा जायेंगे और बहुतों से शायद उत्तर ही न बन आयेगा।

लेकिन सवाल का जवाब है और वह जवाब बड़ा सरल है। वह केवल एक शब्द में दिया जा सकता है और वह एक शब्द 'खुशी' (आनन्द) है।

हम धन चाहते हैं खुशी (आनन्द) के लिए।
हम विद्या और बुद्धि चाहते हैं खुशी के लिये।
हम स्वास्थ्य चाहते हैं खुशी के लिये।
और हमको ईश्वर की तलाश और जाँच-पड़ताल है खुशी के लिये।

४—ध्यान देने से प्रतीत होता है कि खुशी ही सबसे बढ़कर वस्तु है। स्वास्थ्य हो और खुशी न हो तो वह कुछ नहीं है। धन हो और खुशी न हो तो वह कुछ नहीं। विद्या और बुद्धि हो और खुशी न हो तो वह कुछ नहीं। माना कि यदि ईश्वर भी मिला और खुशी नहीं मिली तो कुछ भी नहीं मिला।

५—खुशी सबसे मुख्य है। इससे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है।

हम खाते-पीते हैं खुशी के लिये,
हम खेलते-कूदते हैं खुशी के लिये।
हम पढ़ते-लिखते हैं खुशी के लिये,
हम सोचते-समझते हैं खुशी के लिये।
हम धन इकट्ठा करते हैं खुशी के लिये।
रुपया-पैसा कमाते हैं खुशी के लिये।
फिर हम ईश्वर की भक्ति किसके लिये करते हैं?
केवल खुशी के लिये।
यदि खुशी का सवाल न होता तो कैसा खेल-कूद!

कैसा खाना-पीना ! कैसा लिखना-पढ़ना ! कैसा धन-मान ! और कैसी ईश्वर की भक्ति और पूजा।

६—यह सब-के-सब अर्थात् परिश्रम, सुख-चैन, विद्या-बुद्धि, भक्ति-भाव, शादी-विवाह केवल एक खुशी के भाव के आधीन हैं।

विशेष ध्यान देने से यह पता लगता है कि यह सब-के-सब अपने तौर पर प्राप्त की जाने वाली वस्तुयें नहीं हैं। प्राप्त करने की वस्तु तो खुशी है। और यह सब खुशी प्राप्त करने के उपाय और साधन हैं।

यदि खुशी (आनन्द) प्राप्त करने की वस्तु न होती तो इन साधनों की ओर ध्यान भी न जाता। साधन और साध्य (प्राप्त करने की वस्तु) में अन्तर होता है। साधन स्वयं वह वस्तु नहीं है बल्कि उस वस्तु के प्राप्त करने का हथियार है। हथियार से केवल उस समय तक सम्बन्ध रक्खा जाता है जब तक प्राप्त की जाने वाली वस्तु की प्राप्ति में सफलता नहीं होती। वह वस्तु प्राप्त हुई कि साधन समाप्त हो गये।

७—मान लो कि तुम यह पूछो कि खुशी की इच्छा किस लिए की जाती है तो तुम्हारा यह सवाल बेजा ग़लत और अनसमझी का सवाल होगा। फिर भी हम तुम्हें उत्तर देंगे कि खुशी की इच्छा केवल खुशी के लिये है। खुशी से बढ़कर संसार में कोई वस्तु नहीं है।

आनन्द (खुशी) ही मन की इच्छित वस्तु है और आनन्द से ही मन प्रफुल्लित हो जाता है। आनन्द ही सत्य वस्तु है और आनन्द की हर समय मनुष्य के मन में याद रहती है। आनन्द जब प्राप्त हो जाता है तो सब-कुछ मिल गया माना जाता है।

—:o:—

द्वितीय सन्देश

खुशी (आनन्द) का उद्देश्य

१—दुनिया के जिस लोक या भुवन में हम रहते हैं वह कमी और आवश्यकता का लोक है।

२—हम में से प्रत्येक मनुष्य का इष्ट यह है कि न्यूनता अधिकता में बदल जाय अथवा कमी या अपूर्णता का स्थान पूर्णता ले ले। हमारी चाह पूरी हो और हमारी आवश्यकतायें पूरी हों और पूरी होती रहें।

३—राजा से लेकर भिखारी तक सब को कमी, अपूर्णता और आवश्यकता की शिकायत रहती है और वह शिकायत केवल इस कारण से रहती है कि वह पूर्ण नहीं होती।

४—इनके पूर्ण न होने से कष्ट और दुख होता है। दुनिया बेचैन है। सबको अपनी बेचैनी के दूर करने की रात-दिन फ़िक्र लगी रहती है। वह उसको दूर करने के ख्याल में परिश्रम करते हैं। खैंचातान में पड़े रहते हैं लेकिन यह जीवन-पर्यन्त तक दूर नहीं होती।

५—दुनिया है और बेचैनी ! इससे कोई इन्कार कब कर सकता है। हम दूसरों को कष्ट में देखकर उन्हें धीरज बँधाते हैं, नसीहत करते हैं और समझाते-बुझाते रहते हैं। लेकिन जब हमारे सिर पर बला आती है हम बिलबिला उठते हैं। बुद्धि काम नहीं देती। पहले लाख फ़िलोसफ़ी बघारते रहे हों लेकिन जब दुर्घटनाओं का भारी पहाड़ हम पर आकर गिरा तो फिर सारा मज़ा किरकिरा हो जाता है और फ़िलोसफ़ी बघारना भूल जाते हैं।

६—हकीम जब बीमार होता है, आप अपना इलाज नहीं करता। दूसरे हकीम से अपना इलाज कराता है क्योंकि

उसकी बुद्धि मारी जाती है और वह काम नहीं करती। जब कोई वकील किसी पेचीदा मुकद्दमे में फँस जाता है तो दूसरे वकीलों से मशवरा पूछता है। वह स्वयं दीन और लाचार होता है। दुनिया का यही हाल है।

७—आवश्यकता का यह जगत है। जिसे सौ मिलते हैं वह हजार की फिक्र में पड़ा रहता है। जिसे हजार मिलते हैं उसे लाख और करोड़ का सौदा होता है। लालच और तृष्णा हाथ-पाँव बढ़ा लेते हैं। खुशी नहीं मिलती न वह इस धन दौलत को भोग सकते हैं न उसे छोड़ सकते हैं। साँप और छछूंदर का हाल हो जाता है।

धन नहीं है पास कंगाली का दुख है रात-दिन।
धन अगर है पास तो लालच में फिर गुजरा है सिन[1] ॥
है दुधारी तेग़ दुनिया काट इसकी तेज़ है।
जख्म देती है दिलों को बेगुमां[2] ख़ूरेज़[3] है ॥

निन्यान्वे (९९) का फेर महा दुखदाई है। आगरे में एक मनुष्य रहता था। दिन-भर में एक रुपया कमाता था। शाम को खाता-पीता, हू हक करता। पड़ौस में एक धनी सेठ रहता था। उसकी स्त्री ने उलहना दिया, "हमारे पास धन है मगर खुश नहीं हैं, यह दरिद्री है मगर खुश रहता है।"

सेठ ने कहा, "९९ के फेर में नहीं पड़ा।" रात के समय सेठ ने ९९ रुपये की थैली उसके मकान में फेंक दी। उसे मिली। खुश हुआ और उसी समय से चिन्ता हुई कि इसे पूरे सौ कर देना चाहिए। दो दिन में थैली में सौ रुपये हो गये। अब इसकी खुशी गई। वह रुपये के जोड़ने

(१) आयु (२) निस्संदेह (३) खून बहाने वाली।

में लगा। ज्यों-ज्यों थैली भरती गई धन के बढ़ाने की चिन्ता भी बढ़ती गई। जो थोड़ी-बहुत ख़ुशी थी लालच ने उसे भी छीन लिया। यह लालच का परिणाम हुआ।

९—ख़ुशी न दौलत में है न मान सम्मान में, न विद्वत्ता में। सच्ची बात यह है कि धार्मिक बन्धनों में भी ख़ुशी नहीं है।

१०—फिर ख़ुशी कहाँ, किसमें और किस बात में है इसका पता लेना प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य का कर्त्तव्य होना चाहिए।

है ख़ुशी किसमें कहाँ रहती है वह ?
क्यों नहीं मिलती है क्या कहती है वह ॥१॥
हो रही है उसकी बेजा जुस्तजू[1] !
गो है दिल में सबके उसकी आरज़ू[2] ॥२॥
लो पता उस जा का फिर ढूंढ़ो उसे !
पूछो और फिर पूछकर खोजो उसे ॥३॥
पाओगे जब तुम ख़ुशी ग़म होंगे दूर।
दिल तुम्हारा ग़म से होगा फिर न चूर ॥४॥
ऐ ख़ुशी ! तेरा है नाम व निशां।
मैं मिलूँ तुझ से तू रहती है जहाँ ॥५॥

—:o:—

❀ तृतीय संदेश ❀

* ख़ुशी और दुख *

१—जीवन की समझ हर एक को है। विद्या व बुद्धि की समझ हर एक को है और साथ ही ख़ुशी की समझ भी हर एक को है।

(१) खोज (२) इच्छा।

२—जो शब्द इतने साधारण हों जिन्हें मामूली बुद्धि का मनुष्य भी समझ सकता है उसकी टीका टिप्पणी और व्याख्या करना व्यर्थ है। सरल और सरलता से समझी जाने वाली बात को क्या समझाया जाय और बात का बतंगड़ क्यों बनाया जाय।

३—खुशी प्राकृतिक जगत में व्यापक तत्व है। कोई जगह कोई काम और कोई विचार इससे रहित नहीं है। खाने-पीने में खुशी है। मिलने-जुलने में खुशी है लिखने-पढ़ने में खुशी है। जागने-सोने में खुशी है। खुशी न होती तो हम न खाते-पीते, न मिलते-जुलते, न पढ़ते-लिखते और न सोते-जागते। क्या यह सच नहीं है? यह सच है और इस एक बात में जरा भी झूठ की मिलावट नहीं है। अनुभव बताता है कि यह खुशी झूठ में भी है। झूठ में खुशी न होती तो कोई आदमी कभी झूठ न बोलता।

४—सब में है और सब में रहती है खुशी।
सब की सुनती और सहती है खुशी ॥१॥
जिस जगह देखो, खुशी है जा बजा।
इस से खाली कौन है? कह दो ज़रा ॥२॥
जिस्म में दिल में और है रूह में।
देखो आंखों से दिखायें क्या तुम्हें ॥३॥
अन्तर और ज़ाहिर में रहती है खुशी।
अव्वल और आखिर में रहती है खुशी ॥४॥

५—सुख में खुशी रहती है। खुशी ही का दूसरा नाम सुख है। यह खुशी दुख में भी रहती है। यदि ध्यानपूर्वक परीक्षण करोगे तो यह दुख और कष्ट के भारी बोझ को हल्का करती रहती है।

६—खुशी न होती तो एक दम के लिये जीवित रहना कठिन

होता। इसी खुशी का दूसरा नाम जीवन है। खुशी जीवन है और जीवन खुशी है।

७—तुम सम्भव है सवाल करो कि संसार में खुशी अधिक है या दुख अधिक है। मैं कहूँगा हर जगह सुख ही सुख है। दुख नहीं है। जिसे तुम दुख कहते हो वह सुख की उल्टी शक्ल है। यदि इसे न समझो तो अपने जीवन के प्रति दिन २४ घंटे के व्यवहार पर दृष्टि डालो। तुम इनमें अधिक सुखी रहते हो या दुखी रहते हो? ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है जो रात-दिन दुखी रहता हो। सोने जागने, बात-चीत करने, हंसने-खेलने, मिलने-जुलने में खुशी ही खुशी तो है। यदि रोते कराहते भी हो तो थोड़ी देर के लिये। इस से स्वयं ही परिणाम निकाल सकते हो कि सुख का पल्ला भारी है। दुख का बहुत हल्का है।

सवाल—सुख ही सुख होता और दुख नाम के लिये भी न होता तो बहुत अच्छा होता।

जवाब—न कैसे होता! एक औघड़ फ़कीर दो खोपड़ियों को हाथ में लिये हुये देख रहा था कि कौन खोपड़ी फ़कीर की है और कौन अमीर की है। कोई राजा उधर होकर निकला! मुर्दा खोपड़ियों को इसके हाथ में देख कर अफ़सोस के साथ कहने लगा—"क्या अच्छा होता कि आरोग्यता रहती, रोग न रहता! दौलत ही दौलत होती, दरिद्रता न होती, जीवन होता मृत्यु न होती।" फ़कीर हँसा—"नादान! यदि सब धनी होते तो तेरी नौकरी कौन करता! सब निरोग होते तो उन्हें सुख-दुख की तमीज़ कैसे होती! जीवन ही रहता और मृत्यु न होती तो तू राजा कैसे होता! तेरा बाप ही राजा बना रहता। जा अपना काम कर। तुझे इन बातों का ज्ञान नहीं है।"

वही तुम्हारी दशा है। धन्यवाद दो कि सुख के साथ दुख और दुख के साथ सुख है।

दिन को काम करो। रात को सोओ। जीओ और मरो। आँख खोलो और बन्द करो। साँस अन्दर जाये और बाहर आये। इससे तुम्हारी हानि क्या है?

यह बता दिया कि संसार में सुख की अधिकता है। दुख की कमी है। प्रकाश अधिक व अन्धेरा कम है। जीवन अधिक मृत्यु कम है। फिर भी तुम नहीं समझते।

६—तस्वीर वह अच्छी होती है जिसमें लाइट और शेड दोनों ही होते हैं। लाइट प्रकाश है और शेड अन्धेरा है। दोनों मिल-मिलाकर सुख और खुशी की तस्वीर बनाते हैं।

यह कैसे सम्भव है कि साँस बाहर की ओर बराबर निकलती ही रहे और अन्दर की ओर न लौटे। आँख खुली ही रहे और बन्द न हो। तुम जागते ही रहो और सोओ नहीं। फिर जीवन क्या होता! भ्रम से बचो। असलयित को समझो। राधास्वामी मत इसी के समझाने का सन्देश देता है।

—:०:—

चतुर्थ सन्देश

नित्य और स्वतन्त्र सुख

१—सुख है। सबको सुख की लालसा है। सुख सबको प्राप्त भी है। लेकिन दुनिया में हर जगह दुख की बुराई हुआ करती है। दुनिया की श्रेष्ठ परिभाषा भी यही मालूम होती है कि वह दुख की बुराई करने का स्थल है। इन बुराइयों के होते हुए साधारण समझ-बूझ वालों की बुद्धि में यह बैठ रहा है कि दुनिया दुख से भरी हुई है और यहाँ दुख-ही-

दुख है। सुख का नाम-निशान तक नहीं है परन्तु मामला इससे उल्टा है।

२—और तो और बड़े-बड़े फ़िलोसफ़र (दार्शनिक) और धार्मिक लोगों ने इस दुनिया को "दुख सागर" का नाम दे रक्खा है। एक भी आदमी ऐसा नहीं मिलता जो उसे "सुख-सागर" कहता हो।

३—अच्छा ! यह केवल दृष्टिकोण की बात है। जो मनुष्य जैसी दृष्टि बना लेता है, जिस विशेष विचार का जैसा अभ्यास कर लेता है और करता रहता है, वह वैसा ही बन जाता है और वैसा ही हो जाता है। अब एक सवाल तो यह है कि यह सुख यदि है भी तो क्षणिक होने का विश्वास होता है। आता है और जाता है। इसका सिलसिला यों ही चलता रहता है। क्या यह नित्य या स्थायी भी हो सकता है ? इसके उपरान्त दूसरा प्रश्न यह है कि अमल या आचरण में अपने अधिकार का नहीं है। इसके प्राप्त करने में परिश्रम और इसके स्थिर रखने में भी परिश्रम करना पड़ता है और फिर भी यह अपने अधिकार में नहीं रहता और न किसी को पूर्णतया यह प्राप्त होता है। अब क्या ऐसा भी कोई उपाय है कि सुख (स्थायी) हो जाये, अपने अधिकार में हो और पूर्ण हो।

४—यह तीन सवाल हैं जो प्रायः लोगों की बुद्धि में आया करते हैं और वे इनका उत्तर चाहते हैं। इन्हें ऐसा उत्तर नहीं मिलता जो सन्तोषजनक और विश्वासयोग्य साबित न हो।

यह तीनों सवाल अपनी निस्बती (आपेक्षिक) हैसियत रखते हैं। ऐसे सवाल करने वालों से हम यह पूछते हैं कि क्या तुम अपने आपको नित्य, स्वतन्त्र और पूर्ण समझते हो ?

यदि वे इन साधारण प्रश्नों का उत्तर साधारण ढंग पर दें तो अभी क्षण-भर में इनको साधारण तौर पर अन्तिम उत्तर मिल जाय और उन्हें उस उत्तर के सच होने का पूरा-पूरा विश्वास हो जाय।

यदि मनुष्य अपने आपको नित्य समझ बैठा है तो उसे नित्य सुख का हक़ भी प्राप्त होना चाहिए। यदि मनुष्य अपने आपको स्वतन्त्र जानता है तो उसे सुख के स्वतन्त्र या अपने अधिकार में होने में क्या संशय हो सकता है ?

यदि किसी मनुष्य को पूर्ण विश्वास है कि उसका स्वरूप (ज्ञात) पूर्ण है और उसमें कमी नहीं है तो फिर उसका सुख भी पूर्ण होगा। अपूर्ण न होगा।

जो जैसा है वह वैसा ही है।
जो जैसा कहता है वैसा हो जाता है।
जो जैसा करता है वैसा बन जाता है।
जो जैसा सोचता है वह वैसा ही होकर रहता है।

हर बात मनुष्य के अधिकार में है। कोई ऐसी बात नहीं जो वह न कर सके। पूर्ण मनुष्य के लिए पूर्ण सुख है और उस पर उसका स्वाभाविक अधिकार है।

स्वतन्त्र मनुष्य के लिये स्वतन्त्र सुख है। वह इसका उत्तराधिकारी है और वह उत्तराधिकार कभी छीना नहीं जा सकता। स्थायी और नित्य आत्मा वाले मनुष्य का सुख भी स्थायी और नित्य है। यह उसका गुण है। गुण सदा गुणी के साथ ही रहता है।

इसके विरुद्ध अपूर्ण मनुष्य का सुख अपूर्ण, परतन्त्र का सुख परतन्त्र होगा और क्षणिक या स्थायी जीवन वाले

का सुख क्षणिक होगा।

यह तीनों प्रश्नों के तीन उत्तर हैं।

—:o:—

पंचम सन्देश

❀ मनुष्य में सब कुछ है ❀

१—मनुष्य स्वयं देह, मन और आत्मा का संयोग है।

इसकी देह इसके अस्तित्व का श्रेष्ठ प्रमाण है। इसकी देह स्वयं इसके होने की घोषणा करती रहती है। इसके अस्तित्व या हैपने को साबित करने के लिये किसी तर्क-वितर्क या दार्शनिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। वह है। उसकी देह क्षण-क्षण उसके 'हैपने' या अस्तित्व का विश्वास दिलाने को काफ़ी है।

मनुष्य का मन इसके सोच-समझ, बुद्धि और विवेक का उच्च प्रमाण है और उसका मन स्वयं उसके बुद्धिमान होने की हर समय घोषणा किया करता है। वह बुद्धि और मन की सृष्टि है। इसके साबित करने के लिये किसी तर्क-वितर्क या दार्शनिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। वह सोच-समझ वाला है। यह स्वयं मानसिक सृष्टि के होने का विश्वास दिलाने को काफ़ी है।

इसकी आत्मा उसके आनन्द और आनन्द-प्रिय होने का उच्चकोटि का प्रमाण है। उसका आनन्द उसके आत्म-स्वरूप होने की स्वयं घोषणा करता रहता है। इसके भी साबित करने की किसी तर्क या युक्ति या दार्शनिक (फ़िलोसफ़ी) प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। वह आनन्द वाला है।

२—देह अस्तित्व (सत) का प्रगट करने वाला है और प्रगट होने का स्थान है।

मन, बुद्धि और विवेक को प्रगट करने का स्थान है और प्रगट करने वाला है।

आत्मा आनन्द का जौहर (सार तत्व) है।

३—मनुष्य की बनावट से आप प्रगट है कि मनुष्य में सत, (अस्तित्व) चित व आनन्द तीनों ही हैं। यदि थोड़ा आगे बढ़कर सोचोगे तो तुमको स्वयं विश्वासपूर्वक ज्ञात हो जायगा कि प्रत्येक मनुष्य स्वयं ही सत-चित-आनन्द है। इसमें यह तीनों जौहर (सार तत्व) मोजूद हैं जो कभी उससे अलग-थलग नहीं किये जा सकते। यदि किसी में साहस और शक्ति हो तो वह अलग कर दिखावे, मगर यह असम्भव है।

४—मनुष्य क्या है ? तीन में एक और एक में तीन, और तीनों इसमें इस प्रकार मिले-जुले और रले-गुथे हुये हैं कि एक को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता और न अलग करके दिखाया जा सकता है।

जहाँ 'हैपना' (सत) है वहाँ ज्ञान और आनन्द अवश्य उसके साथ रहेगा, वर्ना हैपने' का ज्ञान और भान कैसे होगा और बिना ज्ञान और भान के तुम 'हैपने' को हैपना कैसे और किस मुंह से कहोगे या कह सकोगे।

जहाँ ज्ञान है वहाँ 'हैपना' और आनन्द अवश्य है वर्ना इस ज्ञान और इसकी समझ कहाँ और किसमें रहेगी। बिना समझ के तुम ज्ञान को ज्ञान किस मुंह से कहोगे और कह सकोगे।

जहाँ आनन्द है वहाँ ज्ञान और 'हैपना' (सत) कैसे न रहेगा, वर्ना इस आनन्द का प्राकट्य किस पर और कैसे

होगा। बिना प्रगट किये तुम आनन्द को आनन्द कैसे और किस मुख से कहोगे और कह सकोगे।

थोड़ा ध्यान दो तो अभी सुगमता से इसका पता लग जाये। इस लिये मैं मनुष्य को तीन में एक व एक में तीन की सम्मिलित अवस्था कहता हूँ।

इस रली-मिली गुथी हुई और सम्मिलित अवस्था वाली सृष्टि को हिन्दू शास्त्र सच्चिदानन्द अर्थात् सत-चित-आनन्द कहते हैं। सत-हैपना है, चित ज्ञान है और आनन्द खुशी है।

एक में हैं तीन और तीनों में एक।
तीनों मिलकर देख लो कैसे हैं एक॥
तुम खुशी हो, तुम में रहता है सरूर[1]।
है तुम्हारी ज़ात[3] से इसका ज़हूर॥
तुम हो हस्ती[2] और हस्ती[2] ज़ात[3] है।
हस्ती[2] समझो हस्ती[2] सच्ची बात है॥
इल्म तुम हो तुम में है अक़्ल वोतमीज़।
कब हुए तुम अक़्ल से खाली अज़ीज़॥
सच्चिदानन्दम् अखंडम् केवलम्।
तुमको क्यों किस बात का है रंज वो ग़म॥
ज़ात[3] को अपनी ज़रा पहचान लो।
खुश रहोगे इसको दिल से मान लो॥
जो है तुम में वह तुम्हारी जान है।
तुम में सत-आनन्द तुम में ज्ञान है॥
अस्ल को अपने कभी जाना नहीं।
ज़ात[3] क्या है इसको पहचाना नहीं॥
मारे-मारे फिर रहे हो क्यों भला।
सुहबते मुरशिद[4] में लो जाकर पता॥

(१) आनन्द (२) सत (३) स्वरूप, असली रूप (४) गुरु।

तृतीय भाग

❀ प्रथम सन्देश ❀

अपने आपे का अध्ययन

—:o:—

पढ़ते हो और पढ़ के तुमने क्या किया।
अपने आपे का नहीं पाया पता ॥१॥
तुम हो क्या अपनी समझ आई नहीं।
है यही अज्ञानता इसमें दानाई[1] नहीं ॥२॥
इल्म है दुनिया की सारी बात का।
इल्म लेकिन कुछ नहीं है ज़ात[2] का ॥३॥
लाख बातों का है जौहर[3] एक बात।
सारे इल्मों से है बेहतर इल्म ज़ात ॥४॥
यह हक़ीक़ी इल्म बाक़ी जहल[4] है।
अस्ल है यह बाक़ी सब कुल नक़्ल है ॥५॥
कौन हो तुम ? कौन हो तुम ? कौन तुम ?
किस लिये नादानी में रहते हो गुम ॥६॥
जान ले आपे को तब यह ज्ञान है।
अपने को जाना नहीं अज्ञान है ॥७॥

—o:—

दूसरा सन्देश

इन्द्रियों की त्रिपुटी

—:o:—

१—देह के यन्त्र दस हैं—५ ज्ञानेन्द्रियाँ और ५ कर्मेन्द्रियाँ।

(१) ज्ञान (२) स्वरूप (३) सार (४) अज्ञान।

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—आँख, कान, नाक, त्वचा और जिभ्या (रसना) हैं।

पाँच कर्मेन्द्रियाँ—हाथ, पाँव, जिभ्या (वाणी), गुदा और उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) हैं। इनका सम्बन्ध कर्म से है जो केवल शरीर का है।

२—दिल (अन्तःकरण) के यन्त्र ४ हैं—चित (चिन्तन करने वाला यन्त्र), मन (मनन करने वाला यन्त्र), बुद्धि (विवेक और निर्णय का यंत्र) और अहंकार (अभिमान का यंत्र)

और इनका सम्बन्ध बुद्धि, समझ, विवेक से है। ज्ञान इसका गुण है।

३—रूह (आत्मा) का यंत्र सुरति या तवज्जह है। उसका गुण यकसुई और यकरुखी है।

४—देह सत (हस्ती) है। मन (दिल) बुद्धि और विद्या है। आत्मा (रूह) आनन्द या खुशी है। कर्म देह से होते हैं। विवेक मन (दिल) से होता है और खुशी या आनन्द आत्मा से है। इस प्रकार देह, मन और आत्मा अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करते रहते हैं।

५—यदि देह, मन और आत्मा तीनों में परस्पर मेल है तब तो जीवन सुखमय होता है। यदि तीनों में मेल नहीं है तो जीवन दुखमय हो जाता है। जिसकी समझ में यह नियम आ गया वह दुनिया में अध्यात्मिक दृष्टिकोण से सफल होता है और जिसकी बुद्धि में यह नहीं बैठा वह अध्यात्मिक दृष्टि से असफल होता है।

६—शारीरिक अभ्यास या व्यायाम करने वाला पहलवान होता है और सैकड़ों में आदरणीय समझा जाता है।

बुद्धि से सम्बन्धित कामों का अभ्यासी युक्तिवान,

बुद्धिमान और विवेकी होता है। हजारों पर उसका सिक्का बैठा रहता है और वह प्रभावशाली समझा जाता है।

आत्म-ज्ञान के अभ्यासी का लाखों पर प्रभाव होता है। सब उसका मान करते हैं और वह हर समय आनन्द में रहता है।

यों तो ये सब हर समय रले-मिले काम करते रहते हैं परन्तु जब तक तीनों में जाने या अनजाने पारस्परिक सम्बन्ध रहता है, तब तक काम बड़ी सुन्दरता से होता रहता है और जीवन भव्य (शानदार) रहता है। यदि कहीं इनमें भेद-भाव आ गया तो परिणाम उल्टा होने लगता है। इन तीनों के मेल-मिलाप ही में अंतरीय सार भेद छिपा रहता है।

लेकिन इन तीनों की तीन अवस्थाएं, तीन दशाऐं अथवा तीन स्थान हैं जिनमें उनके गुण प्रत्यक्ष रूप में प्रगट होते हैं। आत्मिक ज्ञान के विद्यार्थी को इनका जानना अत्यन्त आवश्यक है।

देह के कर्म करने की अवस्था को जागृत कहते हैं। इस अवस्था में रहकर देह की इन्द्रियां काम करती हैं। इनके छिद्रों के मुंह बाहर की ओर खुले रहते हैं। नेत्र बाहर की ओर खुले हुये देखते हैं। कान बाहर की ओर खुले हुये सुनते हैं। हाथ पांव, नासिका और जिभ्या आदि बाहर की ओर खुले हुये काम करते हैं।

यह जीवन का प्रगट या इन्द्रियलोक कहलाता है। मन की आन्तरिक कल्पनाओं की अवस्था को स्वप्न कहते हैं। इस अवस्था में रहकर आन्तरिक इन्द्रियाँ काम करती रहती हैं। इनका रुझान अन्तर की ओर खुल जाता है। इनका प्रभाव जागने पर वाह्य इन्द्रियों पर आता है। यह जीवन का अन्तरीय लोक है।

आत्मा के आत्मिक लोक को सुषुप्ति कहते हैं। इस अवस्था में रहकर आत्मा का हथियार सुरति (तवज्जह) काम करती है। इसमें निमग्नता, (गहरी निद्रा) ध्यान और समाधि रहती है। रुख अन्तर के अन्तर में खुल जाता है, और इसका साधन अन्तर के अन्तर में होता है। फिर इसका प्रभाव पहिले अन्तःकरण पर सोते समय आता है और जागने पर इन्द्रियों पर आता है।

८—देह, मन और आत्मा के व्यवहार का यह वर्णन है। यह परस्पर इस प्रकार मिले-जुले रहते हैं कि एक को दूसरे से अलग करना न सहज है न हर एक का काम है।

९—देह में कर्म, अन्तःकरण में बुद्धि और आत्मा में आनन्द रहता है।

१०—आनन्द तो शारीरिक व्यवहार और अन्तःकरण के बुद्धि सम्बन्धी आविष्कार दोनों में है लेकिन इसका अपना निजी विशेष स्थान है।

जो आत्मा से अधिक सम्बन्ध रखता है वह अध्यात्मिक मनुष्य कहलाता है और सबसे अधिक आनन्द उसी के हिस्से में आता है।

—:o:—

तुम देखते हो कि काम करते हुये हाथ-पाँव सुन्न हो जाते हैं और सोचते-सोचते मन भी थक जाता, उकता जाता, और घबरा जाता है। उस समय सुषुप्ति में जाने की आवश्यकता प्रतीत होती है।

यदि उसमें सुख-चैन व शान्ति की दशा न होती तो कौन इस ओर रुझान करने लगा था! तुम थक थकाकर कह उठते हो कि अब थोड़ा विश्राम लेलें और फिर काम करें। सुषुप्ति के कुण्ड में जाकर जब इन्द्रियाँ और मन थोड़ी देर

के लिये डुबकी लगा जाते हैं तो नवीन शक्ति आजाती है और आंतरिक आनन्द उन्हें नवीन जीवन प्रदान करता है।

११—क्या गहरी नींद में जाकर तुम स्वीकार नहीं करते कि इस दशा में तुम आनन्द में थे। लोक-परलोक की चिन्ता नहीं थी। तुम्हारा यह मान लेना ही इस आनन्द का श्रेष्ठ प्रमाण है और अधिक प्रमाण क्या दिया जाय।

—:o:—

तृतीय सन्देश

सत, चित, आनन्द की खोज अपने अन्तर में हो।

१—सत या जीवन कहाँ है? हमारे अन्तर में है। ज्ञान और विवेक कहाँ है? हमारे अन्दर है। आनन्द कहाँ है? हमारे अन्तर में है।

२—जब हम कोई काम करने लग जाते हैं तो काम करने की शक्ति हमारे अन्दर से निकल कर बाहर प्रगट होती है। तुम देखो हाथ, पाँव, आँख, कान आदि इन्द्रियों की शक्ति कहाँ से आती है? हमारे अपने ही अन्दर ही से तो वह आती है। इन्हीं शक्तियों के मिले-जुले या एकत्रित जीवन को सत या मिले-जुले अस्तित्व (सत) को जीवन कहते हैं।

३—जब हम किसी बात को सोचने-समझने लगते हैं तो सोचने-समझने की शक्ति हमारे अन्दर प्रगट होती है। तुम देखो कि बुद्धि, विवेक, मनन, चिन्तन कहाँ रहते हैं? वे हमारे अपने ही अन्दर रहते हैं। इन बुद्धि विवेक की मिली-जुली या एकत्रित दशा का नाम ज्ञान है।

४—इसी प्रकार जब हम सुख शान्ति की दशा में होते हैं तो इन सबका अपने अन्दर में अनुभव होता है। बाहर इनका अस्तित्व नहीं है। हमारे अन्तर में है और इन्हीं

सुख, चैन, शान्ति आदि की अवस्था का नाम आनन्द है।

५— असलियत हमारे अन्दर है। बाहर उसका आभास या परिणाम दिखाई देता है। अगर वस्तु अन्तर में न होती तो बाहर किसी प्रकार प्रगट नहीं हो सकती थी।

६—थोड़ा ध्यान देने से इन सब बातों का स्वतः ही पता लग जाता है।

७—इन सब अवस्थाओं की नापतोल भी हमारे अन्दर में है। केवल नापतोल ही क्यों? इन सब के ठहराव या स्थिति के समस्त केन्द्र भी हमारे अन्दर हैं।

८—जब हम गहरी नींद में सो जाते हैं तो जागने पर यह ज्ञात होता है कि हमारे अन्दर कोई वस्तु है जिसकी धार क्रमशः किसी मुख्य स्थान से उतर कर रग-रग में दौड़ जाती है और फिर जब हम गहरी नींद में जाने लगते हैं तो यह धार हमारे रग-रग से खिंच कर फिर हमारे अन्दर सिमट-सिमटा कर किसी विशेष केन्द्र पर जाकर लय होजाती है।

९— यह हमारे प्रतिदिन के जीवन की घटना है, जिसको यदि हम चाहें तो अनुभव के साथ प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष के साथ अनुभव कर सकते हैं।

१०—दृष्टान्तरूप से जब हम प्रातःकाल को उठते हैं तो हम देखते हैं कि धार ऊपर की ओर से आई और चोटी से लेकर एड़ी तक नहर के पानी की तरह फैल गई। उसकी शक्ति पाकर हम काम-काज में लगे और काम-काज करने योग्य बन गये। समस्त इन्द्रियों और रग-रग में यह धार फैली हुई प्रतीत होती है।

११—फिर जब हम रात को सोने के लिये गये तो देखते हैं कि वही धार उलट कर अन्दर चली गई। हाथ पाँव

आँख, कान आदि-आदि अशक्त होगये। हम खाट पर एक दम पड़े रहे। फिर न हम में काम करने की शक्ति है न हमको समझ-बूझ है। प्रगट रूप से हम शक्तिहीन तो नहीं होजाते लेकिन और तरह पर मुर्दे के समान दिखाई पड़ते हैं।

१२—यह हुआ क्या ? क्यों यह दशा होगई ? कारण यह है कि धार जो आई हुई थी खिंच कर किसी स्थान पर लीन व लय होगई।

१३—आशा है कि तुमने इस भेद को अब कुछ न कुछ समझ लिया होगा।

—:o:—

चतुर्थ सन्देश

विशेष व्याख्या

१—धार कहाँ से आई थी और कहाँ को चली गई, अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है। इसका उत्तर वर्णन में आने से कम चित्ताकर्षक न होगा।

२—जागृत के समय देह और इन्द्रियों में धार फैली हुई थी जिसकी शक्ति से हम काम कर रहे थे। अब वह सिमट कर कहीं को चली गई। कहां को गई ?

३—चूँकि हमारे देह और इन्द्रियों के काम के अन्दर समझ-बूझ की योग्यता मौजूद थी और इसके कारण हम नपा-तुला काम कर रहे थे। धार इस समझ-बूझ में जाकर विलीन हुई। यह सारभौम नियम है कि प्रत्येक वस्तु की अपने मूल की ओर प्रवृत्ति रहती है।

४—समझ-बूझ का सम्बन्ध मन से है, यह उसी का गुण है।

वह असल वस्तु थी और यह उसकी फैली हुई अवस्था थी। वह उसकी ओर लौट गई और इसमें मिलकर इससे एक हो रही। आँख की ज्योति, कान की श्रवण-शक्ति, चर्म की स्पर्श-शक्ति, जिभ्या की रसना-शक्ति, नाक की सूँघने की शक्ति मन में जाकर लीन हो गईं।

५—जागृत के समय यह धार इन्द्रियों में थी। अब सोते समय वह मन की स्वप्नावस्था में विलीन हो गई। मन स्वप्न देखने वाला, स्वप्नासक्त और स्वप्न में रहने वाला तत्व है। स्वप्न और कल्पना दोनों एक हैं। कल्पना की दशा स्वप्न है। स्वप्नावस्था में मन स्वप्न देखता है और अन्दर-ही-अन्दर कल्पनायें किया करता है।

६—इन्द्रियों का केन्द्र शरीर था। स्वप्न और कल्पनाओं का केन्द्र मन है। इन्द्रियों की यद्यपि प्रत्यक्ष में मृत्यु हो गई, लेकिन वह मरी नहीं। मरी होतीं तो उनका पता नहीं लगता। जैसे जागृत में इन्द्रियाँ देखती, सुनती, चखती, सूँघती और स्पर्श करती थीं, अब भी स्वप्न की दशा में यह सब-की-सब मौजूद हैं। मन अपने अन्दर-ही-अन्दर वही काम कल्पना के आधार पर कर रहा है। केवल दशा अवश्य बदल गई। पहले वह स्थूल रूप में काम करती थी, अब उनका सूक्ष्म रूप बन गया। मन कल्पना द्वारा उन्हें उत्पन्न कर लेता है। इनसे काम लेता है और साथ ही कल्पना और सोच-समझ में सूक्ष्मता आ गई है। इस मन का केन्द्र अन्तर में है। इन्द्रियों का लोक वाह्य था, मन का लोक अंतरीय है।

७—यहाँ ध्यान देने पर कुछ पता चलता है कि जो अन्दर था वही बाहर आया हुआ था। जो इल्म या ज्ञान था वही

अमल या साधन बन गया था। जो स्वप्न और कल्पना थी वही घटना हो गई थी।

८—यह मन ही था जो इन्द्रियों में समाया हुआ था। इन्द्रियों का केन्द्र देह था और ज्ञान अथवा बुद्धि का केन्द्र मन (अंतः करण) है।

९—किसी पाठशाला के विद्यार्थी को गणित का कोई प्रश्न दे दो। जहाँ वह सोचने लगा, आँखें बन्द हो गईं। वह अमल या क्रिया रूप से स्वप्न में चला गया। अनजाने इसकी बुद्धि धारों के चक्र पर पहुँच गई। इस बुद्धि की धार ने अन्तःकरण को छू लिया। उत्तर की कुंजी इसके हाथ लग गई और आँखें खोलकर उसने प्रश्न का उत्तर बता दिया। यह साधारण दृष्टान्त भी इस विषय पर यथेष्ट प्रकाश डालता है।

१०—प्रायः जो बातें जागृत की दशा में नहीं समझ में आतीं, सो जाने पर उनके स्वप्न देखने पर समझ में आ जाती हैं।

११—घटनाओं की दुनिया देह है और कल्पनाओं की दुनिया मन (अन्तःकरण) है। यह दो दुनिया हैं। जिनमें वाह्य और अन्तर का भेद है और इनके समझ लेने से लोक-परलोक की दशा समझ में आ जाती है।

१२—दो बातें हो चुकीं, देह और मन की। अब आत्मा की ओर ध्यान देंगे।

—:o:—

पंचम संदेश

★ विशेष व्याख्या (लगातार) ★

१—वाहर अर्थात् जाग्रत का भेद खोल दिया और अन्तर

अर्थात् स्वप्नावस्था का भेद खोला गया। देह का हाल बता दिया गया और मन का हाल सुना दिया गया। सत का पता मिल गया और ज्ञान की सचाई खुल गई। अब रह गया आनन्द, इसका भी स्वरूप सुनो।

२—यह मन ही है जो अन्दर बाहर, जागृत और स्वप्न में काम करता है। जागृत के समय इसकी बैठक इन्द्रियों पर ही नहीं बल्कि देह के रोम-रोम पर रहती है। स्वप्न की अवस्था में वह अपने विशेष स्थान पर बैठता है अर्थात् मन अपने में प्रवेश करके कल्पनाओं की उधेड़-बुन या स्वप्न के ताने-बाने तनता है।

३—साथ ही यह मन ही है जो ऊपर आत्मा की ओर प्रवृत होता है। इस आत्मा का स्वभाव (ख़ास्सा) सुरति है और मन सुरति से नाता जोड़कर और उनके साथ संयुक्त होकर दूध और चीनी की तरह एक हो जाता है और सुरति के साथ मन का एक हो जाना ही आनन्द है।

४—मन का यह स्वभाव है कि जिससे सम्बन्ध पैदा करता है उसी का रंग रूप ग्रहण कर लेता है। नहर का पानी अगर खेत की क्यारियों में फैलेगा तो क्यारियों की शक्ल का दिखाई देगा। नहर का पानी यदि दो क्यारियों वाले खेत में जायगा तो दो क्यारियों वाले खेत का रूप धारण करेगा। यदि वह किसी गोल और गहरे गड्ढे में पड़ेगा तो गोलाकार दिखाई देगा।

५—मन मध्य में है। उसके नीचे देह है और उसके ऊपर आत्मा है। देह और आत्मा के मध्य में होने के कारण वह दोनों से प्रभावित है। वह दुहरी रंगत इस मन की अपनी विशेषता है। देह की विशेषता नीची, आत्मा की ऊंची और मन की बीच की है।

देह में अनेक पना है।
आत्मा में एक पना है।
मन में दो पना है।

६—देह के विषय में तुम्हें ज्ञात है कि उसमें बहुत से अंग हैं। एड़ी से लेकर चोटी तक इस देह में असंख्य छिद्र हैं और मन इन सबको अपनी शक्ति और प्रभाव दे-देकर गति-मान रखता है। देह में अंगों की अनेकता के कारण नीचे अर्थात् देह में उतरने पर उसको अनेकता या बहुतायत में प्रीति होने के साथ-साथ हर बात में कमी प्रतीत होती है।

आत्मा के विषय में तुम्हें समझा दिया गया कि उसमें सुरति है और सुरति का स्वभाव यकसुई, एकाग्रता और एकता है। जब मन का ध्यान और रुझान सुरति की ओर होता है तो आत्मा के एकपने (एकत्व) के प्रभाव से उसमें यकजहती (एकपना) आ जाता है और वह अपने को उसी प्रकार रूहानी या आत्मिक समझने लगता है जैसे लोहा आग में पड़कर लाल और गर्म अर्थात् अग्नि रूप हो जाता है।

मन के विषय में तुम्हें ज्ञान हो गया कि इसमें आत्मा और देह दोनों के प्रभाव रहते हैं। इन दो प्रकार के प्रभाव रखने के कारण मन द्वन्द बन जाता है।

७—आत्मा से मिलकर यह मन अद्वैत या एकत्वप्रिय बन जाता है। यह इसके अद्वैतप्रिय होने की शान है बड़प्पन है जिसको एकत्ववाद कहते हैं। इस दशा में वह पूर्ण बन जाता है।

देह से मिलकर यही मन अनेक प्रियता के दृश्य देखने और दिखाने लगता है जिसका परिणाम न्यूनता और परि-

मितता होता है। वह त्रुटि पूर्ण और दोषयुक्त हो जाती है। यह इस मन का अनेक वाद है।

मन मन से मिलकर आत्मा और देह के प्रभाव रखने के कारण अपने आप दो गुण वाला हो जाता है। यह इस मन का द्वन्दवाद है।

८—तुम को अद्वैत, द्वैत और अनेकता का भी लगे हाथों पता लग गया। अब चाहे तुम अद्वैतवादी बनो अथवा अनेकवादी बनो। यह सब के सब मन ही के खेल हैं। इन के अतिरिक्त और कुछ नहीं। यह एक में तीन और तीन में एक होकर एक का गीत गाते हैं। ये मिल जुल कर सत-चित-आनन्द कहलाते हैं जिसकी बावत तुमको पहले भी समझा दिया गया है।

नोट—एक उर्दू की कविता का भी भावार्थ इस प्रकार है:—

"यह मन ही है जो विभिन्न आकृतियों के बनाने वाला है।कभी तो यह मन मनुष्य बन जाता है, कभी पशु और कभी देवता। अगर यह देहासक्त हो जाता है तो स्थूल हो जाता है और यदि अपने आप में ठहरा रहे तो बुद्धिमान हो जाता है, और कभी पवित्र, ज्ञानवान और निर्भय हो जाता है और कभी भयभीत हो जाता है।

जब मन की दृष्टि आत्मा की ओर होती है तब इसकी दुनिया के भेद-भाव की दृष्टि निकल जाती है। यह मन ही समझने की वस्तु है, यदि यह समझ में आजाय तो बहुत बोध हो जाता है। यह मन ही है जिसमें ईश्वर के रहने का स्थान है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि मन में ही ईश्वर का निवास है। मन यदि धर्म परायण है तो उसका आत्म दर्शन हो जाता है और यदि दुनिया की ओर इसका रुझान है तो दुनियादार बन जाता है। जब यह

मन ब्रह्म से मिल जाता है तो यह स्वयम् ब्रह्म हो जाता है और जब यह माया के प्रपंच में फँस जाता है तो फिर माया को ही अपना ईश्वर मान लेता है।

दूसरों के मन को अपने मन में मिलाने का मार्ग मन के द्वारा है। जिसको इस मन का भेद मिल जाता है वही बुद्धिमान समझा जाता है।

यह मन ब्रह्म से मिलकर ब्रह्म का पुजारी होता है और जब माया से मिलता है तो माया का पुजारी हो जाता है। यह मन ही पतित हो जाता है और मन ही शुद्धि होकर आत्मा हो जाता है। मन ही अपूर्णता है और मन ही पूर्णता है इसलिये इस मन के असली रूप को समझो।

यह मन समझन जोग साधो! यह मन समझन जोग॥
मन ही ज्ञान और मन ही ध्यान है, मन ही मोक्ष और भोग॥
मन में वेद को पढ़ते ब्रह्मा, शंकर करते योग॥
मन ही अन्दर सृष्टि व्यापी, मन ही में है रोग॥
मन गोविन्द मन गोरख रूपा, मन ही योग वियोग॥
मन ही पानी मन ही अग्नि है, मन ही आनन्द सोग॥
मन ही गुरु है मन ही चेला, मन ही ब्रह्म संयोग॥
मन ही का व्यवहार जगत में, नाहीं जाने लोग॥

—:o:—

आत्मा से मन की एकता होने में आनन्द है, मन का अपने में रहने में बुद्धि और विवेक का बढ़ना है और मन की आसक्ति देह में होने में हमारा दुनियादारी का जीवन है।

१२—देह से एकांग होकर रहने में दुख और व्याकुलता है। मन का मन से एकाँग होकर रहने में द्वन्द के कष्टों का पग-पग पर भय है। केवल आत्मा के सम्मेलन में आनन्द है।

१३—ऊपर के सन्देश को पढ़कर कोई व्यक्ति यह परिणाम न निकाले कि हम सब को सुषुप्ति अर्थात् गहरी निद्रा में डूबे रहने और अचेतन्य और सुस्त होने की सलाह दे रहे हैं। प्रकृति की व्यवस्था में न तो इसका प्रबन्ध है और न इससे कोई लाभ है। इन तीनों अवस्थाओं में परिवर्तन होता रहता है। हमारा उद्देश्य यह है कि विश्वस्त उपायों और क्रियात्मक (अमली) ढंगों से देह और मन को आत्मिक बना लिया जावे। देह, मन और आत्मा में अभ्यास और साधन से समानता पैदा कर ली जाय और वह अपने अधिकार में हो। अधिकार से बाहर न हो, क्योंकि हम प्रतिदिन बेबसी की दशा में जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति के खेल देखते और करते रहते हैं। इससे हमारा जीवन न तो आनन्ददायक होता है और न पूर्ण आनन्द हमको प्राप्त होता है।

१४—जिस मार्ग की शिक्षा राधास्वामी मत देता है यदि नियमपूर्वक उस पर चला जाय तो जीवन शानदार और आनन्ददायक हो जाय। भू-लोक पर रहते हुये हमारा दुनियावी जीवन ऊंचा और आत्मिक बन जाय। दुख पूर्णतया विनाश हो जाय और नित्य और स्वतन्त्र आनन्द हमको मिल जाय। क्या यह परमेश्वर की देन और कृपा नहीं है ?

१५ - साधन आसान है शीघ्र समझ में आने वाला, शीघ्र हो जाने वाला और शीघ्र प्रभावित करने वाला है। बूढ़ा, जवान, स्त्री-पुरुष सब इसका अभ्यास किसी शारीरिक डर भय तथा मानसिक अशंका और संशय के बिना कर सकते हैं। इसके लिये जैसे दुनियावी

व्यवहार व्यापार को छोड़ने की आवश्यकता नहीं है, वैसे ही मज़हब छोड़ने और धर्म बदलने का आदेश नहीं है। इस आत्मिक शिक्षा का अधिकार हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी, जैनी, बौद्ध आदि सबको है। धर्म और पंथ का भेद-भाव नहीं किया जाता। इस साधन व अभ्यास के विषय में हम अगले भाग में वर्णन करेंगे।

चतुर्थ भाग

प्रथम सन्देश

साधन और अभ्यास

—:o:—

१—दुःख क्या है? सुख क्या है? और सुख-दुःख कैसे होता है? सुरत का किसी जमाव या टिकाव के केन्द्र पर ठहर कर स्थिर हो रहना सुख है। सुख आनन्द दायक अवस्था है।

सुरत का किसी जमाव या टिकाव के केन्द्र से बलात् उखेड़ देना दुःख है। यह दुःखदायी अवस्था है।

सुरत के जमने से सुख और सुरत के बलात् या ज़ोर के साथ उखेड़ देने से दुःख होता है।

दुःख और सुख में सुरत के बिखरने और मिलकर एक होने में इसकी असलियत का भेद छिपा हुआ है।

२—इसका कारण तुमको ज्ञात होना चाहिए। तुम सत्, चित

और आनन्द हो। सत् का स्वभाव है फैलना व बढ़ना। बढ़ने और होने अथवा फैलने का गुण इसमें है। सत् में गति है। चित का स्वभाव है सिकुड़ कर अपने अन्तर में सोचने-समझने का, और आनन्द का स्वभाव है सिमट कर एकत्र हो रहने का।

३—देह, मन और आत्मा की अपेक्षा से सत्, चित और आनन्द कहा है। देह में व्यक्त होने तथा फैलाव का सामान है। यह तुम अपनी इच्छा के गतिमान होने पर देखते हो। मन में गति व स्थिरता दोनों हैं। आत्मा में ठहराव अथवा स्थिरता का गुण है और इसी स्थिरताई अवस्था का नाम आनंद है। इस पर सोच-विचार करने की आदत डालो तब सरलता से समझ सकोगे।

४—राधास्वामी मत में यह तीनों बातें तीन यंत्रों की दृष्टि से हैं। देह या इन्द्रियाँ (इंद्रिय संयुक्त) गति या हरकत करने की आदी हैं। मन या बुद्धि तथा विवेक (अंतःकरण संयुक्त) गतिमान और स्थिर दोनों है और आत्मा या तवज्जह (सुरत संयुक्त) स्थिरता का आदी है। आनंद इस स्थिरता का परिणाम है।

५—सुरत संस्कृत शब्द सु-रत, सु-वासना, सु-इच्छा का समानार्थ (पर्यायी) शब्द है। इसको उर्दू में तवज्जह कहते हैं और इस तवज्जह में सुरत, सुवास, सुभाव अथवा सुइच्छा है। सु के अर्थ हैं अच्छा और रत (रम) के अर्थ हैं खेलना। जो अच्छे खेल वाली हो उसे सुरत कहते हैं।

यह सुरत का पहला गुण है और जब वह खेल (रत या रम) के साथ मिलकर सुख तथा शांति की दशा में आकर स्थिर होकर चुप हो रहती है तो उसका नाम 'निरत' (संस्कृत नि=नहीं और रत या रम=खेल) है। सुरत

का लटकाव, सिमटाव और एक होने की शक्ति को निरत कहते हैं। राधास्वामी मत में साधन और अभ्यास की दृष्टि से इन दोनों शब्दों का अधिकता के साथ प्रयोग किया गया है और इन दोनों शब्दों के अर्थ की समझ आने से राधास्वामी मत की समझ आ जाती है।

—:o:—

दूसरा सन्देश

सुरत (सु-रम या रत) का खेल

१—सुरत का खेल खुशी है। यह सुरत (व्यक्ति की) चोटी पर है। बीच में मन है और नीचे देह है। उसी की धार पहले मन में आती है फिर मन से नीचे शरीर के अंगों, इन्द्रियों और रग-रग तथा छिद्र-छिद्र में नियमित रूप से आती-जाती है।

२—इस (धार) के केन्द्र पर जम कर टिकने और एक होने का नाम खुशी (आनन्द) है। इसके केन्द्र से ज़ोर से हटाये जाने का नाम दुःख है। यह बार-बार समझा दिया गया। अब दृष्टान्त द्वारा समझो—

३—तुम चौसर, शतरंज या ताश खेल रहे हो। सुरत खेल में लगी हुई है। तवज्जह का कुल आकर्षण खेल पर है और तुम खुश हो। तुमको सुख मिल रहा है। यदि कोई व्यक्ति आये, चौसर और शतरंज की बिसात उलट दे अथवा ताश को छीन बखेर दे। सुरत बलपूर्वक हटाई गई। परिणाम दुःख हुआ।

४—सुरत की धार मस्तिष्क से उतर कर शरीर के हाथ-पाँव आदि में केन्द्र बना-बनाकर इकट्ठी हो रही थी, तुमको

सुख मिल रहा था। चाकू या छुरी से घाव हो गया। धार आती है। काट या घाव के कारण उसे विवश होकर बार-बार हटना पड़ता है। वह केन्द्र पर स्थिर नहीं होने पाती और तुमको दर्द व दुःख होता है।

५—मस्तिष्क से सुरत की धार जठराग्नि में ठहर कर पाचन-शक्ति को बल देती है। तुमने ग़लती से कोइ हानिकारक वस्तु खाली। वह विजातीय मल बनकर रुकावट का कारण होगी। आती हुई धार उस बीच में आई हुई वस्तु के कारण बार-बार हटाई जा रही है और तुमको पेट का दर्द हो गया। अपच और कब्ज़ की बीमारी हो गई।

६—आँख, नाक, कान, सिर, माथे के दर्द में भी यही धार की रुकावट का नियम काम करता है। सब रोगों की जड़ इसी में है।

७—तुम सो गये। स्वप्न देखने लगे। अच्छे स्वप्न में सुरत जमी हुई है। सुख हो रहा है। कोई बुरा स्वप्न देखा अथवा तुम्हारा हाथ छाती पर पड़कर धार की रुकावट का कारण बन गया और तुम दुःखी हो गये।

८—धार नियम पूर्वक चलने लगे, यही दवा है। दवा, चिकित्सा सब सुरत के नियमित होने से होती और यह दवा इलाज जो वैद्य, हकीम करते हैं केवल सुरत के रुझान को बदलने की दृष्टि से है।

९—किसी मनुष्य के मन में कोई भ्रम, भ्रान्ति या भूत के भ्रम का विचार समा गया। सुरत की धार रुकी। उसमें बेक़ायदगी आ गई। मस्तिष्क बिगड़ गया। ऐसे अवसर पर दक्ष वैद्य भ्रम का इलाज दूसरे भ्रम से करते हैं। भ्रम का चला जाना सुख है। भ्रम का आना दुःख है।

१०—तुम घर में बैठे हुए किसी कारण उदास थे। बाग़ में गये।

फल, फूल, बेल, बूटे, रौस व क्यारियों को देखकर ख़ुश हो गये, क्योंकि सुरत ठहर गई थी। ख़ुशी बाग़ के दृश्य और तमाशों में नहीं थी। अभी कोई भयानक या दर्द-भरी सूचना मिली। सुरत को झटका पहुँचा। वह वक़ायक हटाई गई, दुःख हो गया। अब बाग़ काटे खाता है अब वहाँ खुशी दृष्टिगोचर नहीं आती। अगर इसमें ख़ुशी होती तो तुम फिर भी खुश होते मगर खुशी तो तुम्हारे सुरत में थी।

११—गाना-बजाना हो रहा है। सुरत ठहरी हुई है और तुम खुश हो। किसी सम्बन्धी की बीमारी या मृत्यु का तार आ गया, सुरत हटाई गई और तुम दुःखी हो गये।

१२—तुम मिठाई व पकवान शौक़ से खा रहे हो। सुरत ठहरी हुई है। ख़ुश हो। कोई अप्रिय घटना सुनी, सुरत अपने केन्द्र से हटाई गई और तुम दुःखी हो गये।

१३—इस प्रकार के और हज़ारों दृष्टान्त तुम स्वयम् सोचकर अपने लिये सुख-दुःख के नतीजे निकाल सकते हो। हम अधिक क्या कहें।

—:o:—

तीसरा सन्देश

इन्द्रियों व मन के व्यवहार में सुख-दुख

१—मनुष्य समझता है कि इन्द्रियों में स्वाद लेने की शक्ति है। यह नहीं समझता कि शरीर या इन्द्रियाँ शक्तिहीन हैं। उनके अन्दर जो शक्ति है वह मन की शक्ति है। मन में भी सच पूछो तो शक्ति नहीं है। सारी शक्ति सुरत की है और उसी की शक्ति से यह सब शक्तिवान बने हुये हैं।

२—सुरत बढ़ई के मानिन्द है। मन उसका बसूला है और

शरीर लकड़ी के तख्ते की तरह है। जैसे बढ़ई हाथ में बसूला लिये हुए लकड़ी के तख्ते की काट-छांट और सफाई किया करता है, उसी तरह सुरत मन के हथियार से शरीर का व्यवहार करती है।

३—तुमने मिठाई खाई, समझा कि जिह्वा ने मिठाई का स्वाद लिया। यह गलती है जब तक सुरत की धार केन्द्रित बन कर जिह्वा पर ठहरी रहती है तब ही तक वह नमकीन मीठा, कड़ुवा, कसैला, फीका, तीखा, चरपरा आदि सब का रस लेती है। सोते समय धार ऊपर की ओर खिसक गई। तुम सोते हुये मनुष्य की जिह्वा पर मिठाई रखो क्या वह स्वाद ले सकेगी? नहीं? स्वाद लेने वाली धार तो अन्तर में चली गई।

४—बेहोशी, नींद या बीमारी में धार ऊपर की ओर भीतर ही भीतर खिंच जाती है और जिभ्या तब बेकार हो जाती है।

५—यही हाल और सब इन्द्रियों का है? मैं बात करता हूँ तुम सुनते हो। सुरत को तनिक हटने दो। मानलो अपने घर का ध्यान आ गया। सुरत हटी, अब न तुम खुली हुई आंख से मेरा रूप देख सकोगे, न खुले हुये कान से मेरी बात सुन सकोगे। देखना, सुनना सब सुरत की धार के आधीन था।

६—तुम समझते होगे कि स्वप्न की दशा में मन अपने अन्तर में हर प्रकार के सामान केवल ध्यान से उत्पन्न कर लेता है। इसलिये स्वाद लेने और स्वाद की वस्तु उत्पन्न करने की शक्ति मन में होगी। ऐसा विचार करना भी तुम्हारी भूल होगी।

७—जागृति के पश्चात् इन्द्रियां मन में जाकर लीन हो जाती हैं,

वैसे ही स्वप्न में स्वप्न देखने वाला मन भी सुषुप्ति की दशा आते ही सुरत में लीन हो जाता है और उसके स्वप्न या विचारों का ताना-बाना बिलकुल बन्द हो जाता है। जैसे जागृति वाली इन्द्रियाँ स्वप्न में मर गईं वैसे ही स्वप्न वाला मन भी सुषुप्ति में मर गया। अब क्या है केवल सुरत ही सुरत बाकी है और वह अपने केन्द्र पर स्थित है। धार नीचे से खिंच कर अन्दर इसमें लय हो गई। वह है। शेष शरीर और मन दोनों मुर्दा पड़े हुए हैं।

८—और चूँकि सुरत अपनी धार को समेटे हुए अपने मुख्य केन्द्र पर स्थित है उसके सिमटाव, टिकाव और ठहराव से खुश हो रही है। यहाँ भी वही क़ानून काम करता है।

९—शारीरिक अथवा शरीर की इन्द्रियों का समूह हर तरह से सीमित और संकुचित है, अतएव सीमित व संकुचित होने के कारण वहाँ सुरत के टिकाव का सुख तो मिलता है लेकिन वह सुख अपूर्ण होता है क्योंकि जिस पदार्थ से शरीर बना हुआ है वह शीघ्रता से बदलता रहता है और स्थूल है। सुरत इससे हटने में विवश रहती है।

१०—मन और मन का अन्तःकरणीय मंडल सीमित और असीमित दोनों हैं। वहाँ सुरत का टिकाव कम भी होता है और अधिक भी होता है। मन यदि चंचल है तो सुरत कम टिकती है। यदि वह निश्चल है तो अधिक देर तक टिकती है। इसलिए इस लोक में दोनों तरह अर्थात् न्यूनता से तथा अधिकता से खुशी मिलती है क्योंकि जिस पदार्थ से मन बना हुआ है उसमें शारीरिक पदार्थ की अपेक्षा परिवर्तन उतना शीघ्र नहीं होता। यदि इन्द्रियों का प्रभाव उसमें अधिक हुआ तो उसमें सुख कम हुआ और यदि अपना प्रभाव अधिक हुआ तो खुशी अधिक हुई।

११—आत्मा का मंडल सीमित है न असीमित है। वहाँ सुरत का टिकाव अधिक होता है इसलिए उसकी खुशी केवल अधिक ही नहीं होती बल्कि पूर्ण होती है। पूर्ण खुशी उसे कहते हैं जिसमें मुहताजगी, कमी और किल्लत का नुक्स न हो। यहाँ का मादा (पदार्थ) इस प्रकार का है कि इसमें परिवर्तन बहुत कम होता है, इसलिए सुरत का टिकाव अधिक होता है और पूर्णानन्द इसका परिणाम होता है। लेकिन इसका पदार्थ भी परिवर्तनशील है। यही कारण है कि सुरत सदा उस पर स्थित नहीं रहती। और उसका उत्थान (उठाव या उतार) होता रहता है। कोई व्यक्ति सदा इस अवस्था में नहीं रहता। न रह सकता है।

१२—इन्द्रियों का मंडल जाग्रत, मन का मंडल स्वप्न और सुरत का मंडल सुषुप्ति है।

—:o:—

चौथा सन्देश

❀ कर्म–ज्ञान और उपासना ❀

१—इन्द्रियों से कर्म होता है और वह सीमित रहता है क्योंकि इन्द्रियों का क्षेत्र सीमित होता है

२—मन या दिल से ज्ञान होता है और वह सीमित तथा असीमित दोनों हैं, क्योंकि मन या दिल सीमित व असीमित दोनों हैं। उसे हद व बेहदी दोनों का ज्ञा रहता है। उस मन का क्षेत्र इन्द्रियों की अपेक्षा अधि और अति अधिक होता है।

३—सुरत से उपासना होती है। उपासना (उप=निकट और आसन=बैठक) टिकाव है। उसमें न हद है न बेहदी है। यह दोनों की रिआयत से बरी है। इसलिये इसका

आनन्द न सीमित है न असीमित है। और न उसी विचार से उसके आनन्द को पूर्ण कहा गया है जो वह सचमुच है भी।

४—दुनियाँ के मतों का जोर या तो कर्म पर है या ज्ञान पर है। इनमें से कोई कर्मकाण्डी हैं और कोई बुद्धि या विचार की दृष्टि से ज्ञानकाण्डी हैं। राधास्वामी मत की शिक्षा का बल केवल उपासना पर है और वह उपासना काण्ड है। यह अन्तर है। न वह कर्म है न ज्ञान है। न उसे कर्मकांड कहा जाता है न ज्ञानकांड।

५—कर्मकांडी मत निचले हैं क्योंकि शारीरिक हैं। कर्म सदा इन्द्रियों से किये जाते हैं।

ज्ञानकांडी मत बीच अथवा मध्य में हैं क्योंकि ज्ञान का सम्बन्ध मन से और बुद्धि से है।

उपासनाकांडी (सुरति वाले) मत ऊँचे हैं। सुरति का सम्बन्ध आत्मा से है। सुरत केवल उपासना करती है। आत्मा के निकट बैठती और उससे प्रभावित रहती है।

(६) तुमने कर्म, ज्ञान व उपासना की असलियत का रहस्य समझलिया। राधास्वामी मत में केवल उपासना कराई जाती है। यह उसकी विशेषता है और इसी कारण न वह शारीरिक पंथ है न मानसिक (मन का) पंथ है। वह आत्मिक हैं। इस कारण इसको सब पर श्रेष्ठता है।

७—कर्म व ज्ञान का निरादार स्वीकार नहीं है। क्योंकि अपने-अपने स्थान पर उनको महत्व है। आत्मिक मार्ग सदा कर्म-कांड व ज्ञानकांड से भिन्न हुआ करता है। जिसकी समझ साधारण लोगों को नहीं होती। दृष्टि को ऊँची व विस्तृत करने के कारण इनमें परस्पर तुलना की गई है। नहीं

तो सार-तत्व को कोई कदापि न समझ सकता न जान सकता।

८—देह का पुजारी कर्मकांडी है, मन या बुद्धि का पुजारी ज्ञानकांडी है और आत्मा का पुजारी सुरति का प्रेमी और उपासनाकांडी है। बात स्पष्ट, सच्ची-खरी बावन तोले पाव रत्ती है। न इसमें दिखावा है न बनावट, न लाग न लपेट।

९—कर्म सहल नहीं है। ज्ञान पत्थर की तरह कठोर है उपासना का मार्ग कठिन है। कोई ज्ञानी तत्वदर्शी समझाने वाला और साधन व अभ्यास करने वाला मिल जाये फिर इसमें सफलता ही सफलता है क्योंकि यह खुशी या आनन्द का मार्ग है। आनन्द की चाहने वाली तमाम दुनिया रहती है। इसकी सब भूमिकायें (मंजिलें) आनन्दपूर्वक पूरी हो जाती हैं। प्रसन्न चित्त मजदूर अधिक काम कर लेता है यद्यपि यह मजदूरी का मार्ग नहीं है बल्कि राज मार्ग है।

१०—उपासना और कुछ नहीं है, वह केवल गुरु की संगत और सेवा है। उसकी सामिग्री केवल इतनी है कि कुछ दिनों के लिये गुरु के साथ रहकर इनकी संगत में ध्यानपूर्वक इनके बचनों को सुना करो। इसमें क्या कठिनाई व क्या परिश्रम है? जिस समय मन के सम्पूर्ण संशय व भ्रम दूर हो जाँय फिर इस उपासना और संगत का साधन व अभ्यास अपने अन्तर में करनाहै। जो काम पहिले बाहर किया था उसी का अभ्यास अन्तर में कर लिया। दोनों जगह पर संगत ही संगत और उपासना ही उपासना है। आत्म-ज्ञान का कुछ रहस्य इसी उपासना में छिपा हुआ है।

११—संगत का परिणाम अवश्य होगा। खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है। आत्मक या अध्यात्मिक पुरुष की संगत से अध्यात्म आता है। देह को सुडौल रखने वाले की संगत से देह में सुडौलता आती है। बुद्धिमान की संगत करो बुद्धि आयेगी। मूढ की संगत करो मूढ़ता आयेगी।

१२—यह उपासना है। अन्तर बाहर यही करना है। इसमें केवल पास बैठकर अन्तर और बाहर शब्द सुनना है। इसके सिवाय और कुछ नहीं। चूंकि इस बैठने से विशेष प्रकार का आनन्द मिलता है इस साधन का अभ्यास अत्यन्त सुगम और शीघ्र प्रभाव डालने वाला साबित होता है। कर्त्ता उस्ताद न कर्त्ता शागिर्द।

यह उपासना है।

—:o:—

❀ पांचवा सन्देश ❀

उपासना का साधन व अभ्यास और उसका फल

१—सरल और सुगम शब्दों में तुमने कर्म, ज्ञान और उपासना तीनों की क्रमशः हैसियत समझली।

२—कर्म इन्द्रियों का काम है। ज्ञान, सोच-विचार और मानसिक भावनाओं की उन्नति का साधन है। उपासना केवल उप (निकट) और आसन (बैठना) है जो वाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार से किया जाताहै।

३—उपासना पूजा-पाठ नहीं है। हाँ, मनुष्य गुरु की संगत में संयम और सम्मान के साथ बैठे और ध्यान-पूर्वक उनके बचनों को सुने। यह सभ्यता और शिष्टाचार

का बर्ताव है। उपासना में केवल दो बातें हैं (१) बैठना (२) सुनना।

४—बैठने के शब्द में चित, मन, बुद्धि और अहंकार को यकाग्र करना है। यह आन्तरिक उपासना है। वाह्य उपासना में देह एक अवस्था में रहे। बैठने वाला क्षण-क्षण में पहलू न बदले न मन को डांवा-डोल बनाये। पहिले वाह्य संगत में आसन की दृढ़ता आ जाये। अंग और इन्द्रियाँ अपने स्थान पर रहें और ठीक इसी नियम के अनुसार मन को एक जगह अपने अन्दर लगा कर वहाँ जम कर बैठने का साधन हो।

५—मन कदाचित् यों न लगे इसलिये जैसे वाह्य उपासना में गुरु का वचन प्रेम के कान से सुना जाता है और मन लग जाता है, उसी प्रकार वाह्य उपासना के पश्चात् आंतरिक उपासना करते हुए अन्तरीय शब्द, आवाज़ या राग सुनने की ओर मन लगाया जाय। मन आप लग जायगा। इसमें इतनी कठिनाई नहीं होती जितनी लोग समझते हैं।

६—जैसे आँख, कान, नाक आदि देह में विशेष स्थान बने हैं और वहाँ मन को बैठाकर देखा, सुना और सूँघा जाता है वैसे ही देह के अन्दर भी चित, मन, बुद्धि और अहंकार के भी स्थान नियत हैं जहाँ बैठकर सुनने और केवल सुनने का साधन किया जाता है।

७—वाह्य उपासना कर लेने के पश्चात् गुरु स्वयम् तुमको उनके केन्द्र का ज्ञान प्रदान करेगा और यह बतावेगा कि क्या सुनना है।

८—इसी सुनने के साधन को श्रुति-मार्ग या केवल प्राण से प्रणव का राग गाना कहा जाता है। इस मार्ग के भिन्न-

भिन्न नाम हैं जैसे उद्गीथ, प्रणव गान (प्राण के कान से गाना)। श्रुति को सुनते हुए अपने अन्तर में लगाना है।

९—शब्द या आवाज में स्वाभाविक रूप से मन को आकर्षित करने की शक्ति है। तुम सितार की गति सुनते हो। मन लग जाता है। तुम कोई बाजा सुनो मन लग जायगा। तुम किसी की बात सुनने लग जाओ, तवज्जह का रुझान स्वयंमेव चला जायगा। जब दुनिया की वाह्य स्थूल आवाजों में तवज्जह के खींचे रखने की यह शक्ति है तो आंतरिक आवाजों में जो अति सूक्ष्म हैं कितनी आकर्षण शक्ति होगी! यह तो तुम आप सोच-समझकर परिणाम निकाल सकते हो।

१०—मन लगते-लगते लग जायगा। चंचलता मिटते-मिटते मिट जायगी। मन थोड़े दिनों बाद यकसू या एकाग्र होने लगेगा। उस समय तवज्जह (सुरत) की शक्ति जाग उठेगी। सुरत जागृत हो जायगी और इस अध्यात्म का सिलसिला आप चालू हो जायगा।

"मन लागत-लागत लागा। भौ भागत-भागत भागा॥
सोया मनुआ जन्म-जन्म का, जागत-जागत जागा॥"

११—इस मार्ग का राधास्वामी मत में सुरत शब्द योग नाम है। सुरत आत्मा है। शब्द श्रुति है। शब्द और श्रुति का मिलाप योग है। इससे सुगम और सहज योग कोई भी नहीं है।

१२—इस साधन के लगातार करते रहने से मन की एकाग्रता पहले आयेगी उससे आनन्द, विश्वास और शान्ति की अवस्था सुगमता से आती जायगी और जीवन बिना कठिनाई तथा परिश्रम के स्वयमेव आत्मिक हो जायेगा

और आनन्द सहित समस्त अध्यात्मिक स्थान पूरे हो जायेंगे और इष्ट पद तक पहुँचना कठिन न होगा। हाँ कठिन न होगा !! हाँ कठिन न होगा !!!

१३—तुमने असली श्रुति-मार्ग और शब्द अभ्यास के उपाय या ढंग का सच्चा ज्ञान आंशिक रूप में, क्रियात्मक रूप में, अथवा ज़बानी रूप में सुन लिया। शेष बातें गुरु स्वयंम बताता चलेगा। **सावध न ! बिना गुरू की सहायता लिये हुए इस मार्ग में** भूलकर भी पग न रखना। वर्ना इसकी सरलता और सुगमता को कठिन बना लोगे। व्यर्थ ही ख़तरे में पड़ोगे। स्पष्ट शब्दों में यह गुरुमत कहलाता है।

१४—तुम लाख विद्वान्, दार्शनिक हो, इस योग का साधन व अभ्यास बिना गुरू के आदेश और सहायता के कभी न करना। तुम थोड़ी सी गुरू की संगत और उपासना करने तो लग जाओ फिर गुरू की वाणी अपने आप तुम्हारे सीखे हुए ज्ञान-विज्ञान और फिलोसफी को जला देती हुई इस आत्मिक भेद के समझाने में सहायक होगी और तुम्हारा ज्ञान इस आत्मिक ज्ञान की सहायता से पूर्ण हो जायगा।

॥ इति ॥